चन्दामामा
अक्तूबर १९८५
2
RS

“बनता है ये खेल खेल में.हँसी खुशी में,रेल पेल में
सोच समझ कर झट चिपकाओ
मौज-मौज में इसे बनाओ”
फ़ेवी फ़ेयरी
"जादू का करिश्मा नहीं
हाथ का कमाल है
पैसे का सवाल नहीं
काम बेमिसाल है।"
"जल्दी आकर हमें बताओ
करना क्या है—यह समझाओ।"
"जल्दी आओ
सब कुछ सुन लो....
सोचो समझो झट चिपकाओ
फ़ेविकोल एम आर को लाओ
मोर बनाओ,
गुड़िया, टोकरी, पर्स बनाओ
न चिप-चिप है, न है गंदगी
मज़े-मज़े में करते जाओ
करते जाओ॥"
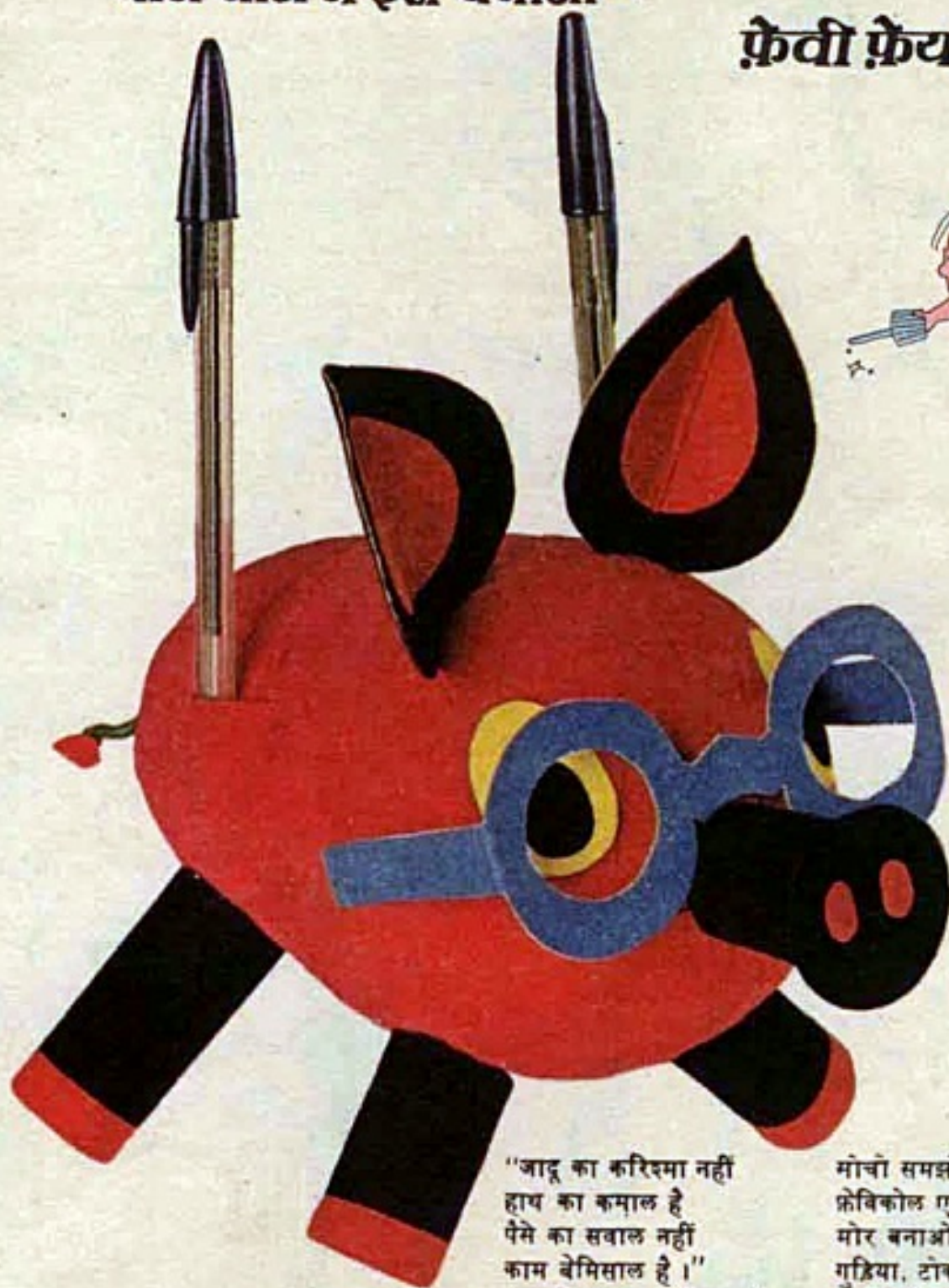
चीज़ें जो चाहिएं:

१. एक गुब्बारा (मंझली साइज़)
२. अख़बार के कुछ पन्ने
३. गुलाबी, काले, नीले और पीले वेल्वेट पेपर
४. सफ़ेद चार्ट पेपर
५. गुलाबी धागा
६. फ़ेविकोल एम आर एड्हेसिव

१. तीन चौथाई क्षमता तक गुब्बारा फुलाइए, जिससे कि गुब्बारा नर्म रहे. धागे से कस कर गुब्बारा बांधिए, जिससे कि हवा न निकलने पाए. इस लंबे बंधे सिरे से पूंछ बन जाएगी.
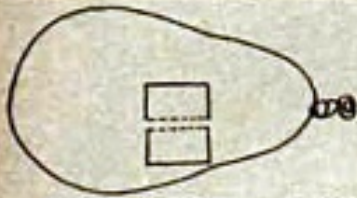
२. अख़बार को १"×१" चौरस टुकड़ों में काट लीजिए. १०-१५ मिनट तक टुकड़ों को पानी में भिगोए रखिए. टुकड़ों को एक एक करके गुब्बारे पर रखिए, हर टुकड़ा एक दूसरे के थोड़ा ऊपर होना चाहिए. गुब्बारे को पूरी तरह से ढंकिए, इस तरह अख़बार की ३ सतहें लगाइए.
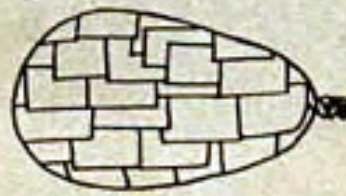
३. अब अख़बार के १"×१" के टुकड़े लीजिए और हर एक पर फ़ेविकोल एम आर एड्हेसिव लगाइए. इन्हें गुब्बारे पर चिपकाइए. इसी ढंग से ४ ऐसी सतहें लगाइए. इसे ८-१० घंटे रहने दीजिए.

४. जब गुब्बारा सूख कर कड़ा हो जाए, एक पिन से गुब्बारा फ़ोड़ दीजिए. सिर्फ़ अख़बार का खोल रह जाएगा. गुलाबी वेल्वेट पेपर के १"×१" के चौरस टुकड़ों पर फ़ेविकोल एम आर एड्हेसिव लगाइए और उसकी अंतिम तह लगा कर गुब्बारा सजाइए.

५. १.५"×२" साइज़ के ५ चार्ट पेपर के टुकड़े लीजिए इनसे १.५" ऊंचे सिलिंडर बनाइए इन पर काला वेल्वेट पेपर चिपकाइए. ४ सिलिंडरों को गुब्बारे पर चिपका कर पैर बनाइए, एक सिलिंडर को चिपका कर नाक बनाइए. नाक पर चार्ट पेपर की एक गोलाई चिपकाइए जो काले वेल्वेट पेपर से ढंकी हो.
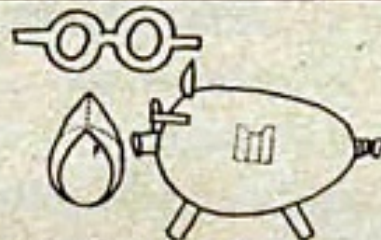
६. चार्ट पेपर से ही कान और चश्में बनाइए. कानों पर काला वेल्वेट पेपर और चश्मों पर नीला वेल्वेट पेपर चिपकाइए. इन्हें सही जगह पर चिपकाइए. पीले वेल्वेट पेपर से आंखें और काले वेल्वेट पेपर से आंखों की पुतलियाँ बनाइए.

७. चार्ट पेपर के दो १"×१.५" के टुकड़े लीजिए और उनपर गुलाबी वेल्वेट पेपर चिपकाइए. इन्हें पोर्की के शरीर के दोनों ओर चिपका दो ताकि पेनों के लिए पॉकेट बन जाए.

औइंक! औइंक! पोर्की पिग तैयार
आपके पेनों का रखवाला

सिन्थेटिक एड्हेसिव

उत्तम काम, उत्तम नाम फ़ेविकोल का यह परिणाम

अक्तूबर १९८५

विषय-सूची

★

एक प्रति : २-००

वार्षिक चन्दा : २४-००

पाठकों से निवेदन!

'चन्दामामा' के प्रकाशन सम्बन्धी कागज़ का मूल्य इस बीच आवश्यकता से कहीं अधिक बढ़गया है ! फिर भी हमने पत्रिका का मूल्य बढ़ाकर इस बोझ को पाठकों पर डालने से बचाने की अपनी ओर से पूरी कोशिश की । लेकिन इस समय के मूल्य पर पत्रिका का प्रकाशन करना हमारेलिए असंभव सा प्रतीत हुआ । इसलिए नवम्बर १९८५ के अंक से 'चन्दामामा' की एक प्रति का मूल्य अनिवार्य रूप से ५० पैसे बढ़ाना पड़ रहा है । इस कारण से नवम्बर '८५ से 'चन्दामामा' की एक प्रति का मूल्य रु २-५० तथा वार्षिक चन्दा ३०-०० रुपये होगा !

आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि हमारे पाठक तथा एजेंट्स इस परिवर्तन को दृष्टि में रखकर हमारी स्थिति को सहृदयता पूर्वक समझ कर यथा प्रकार हमें सहयोग देने की कृपा करेंगे ।

प्रकाशक

मुड़-मुड़ के देखे संसार
सुपर रिन की चमकार!
सुपर
रिन
सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद
किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

चन्दामामा

संस्थापकः चक्रपाणि | संचालकः नागिरेड्डी

कुछ लोग स्वभाव से ही आलसी होते हैं, यहां तक कि बोलने में भी वे कुछ ही शब्दों की थकान मोल लेते हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उनमें विवेक, बुद्धि और दुनियावी ज्ञान का भी सर्वथा अभाव रहता है। 'सलाहकार' शीर्षक कहानी में आप एक ऐसे युवक के परिचय में आयेंगे, जो घोर आलसी होने पर भी प्रखर रूप से मेधावी था।

अमर वाणी

अभ्यासेन न लभ्यंते, चत्वारः सहजा गुणाः ।
दातृत्वं, कवित्वमुचिज्ञता ॥

[दानशीलता, प्रिय भाषण, कविता की रचना और उचित-अनुचित का विवेक ये चार सहज गुण माने गये हैं। इन्हें केवल अभ्यास से प्राप्त नहीं किया जा सकता ।]

वर्षः ३८ | अक्तूबर १९८५ | अंकः २

एक प्रतिः २-०० | वार्षिक चन्दाः २४-००

कमाल का मज़ा...गोल्ड स्पॉट का मज़ा

'चन्दामामा' के संवाद

विद्यार्थियों का पर्वतारोहण

बम्बई के एक शिक्षण-संस्थान 'इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी' के छह विद्यार्थियों ने एक दल बनाकर हाल ही में हिमालय के ६,३४८ मीटर ऊँचे फवरंग शिखर पर सफलतापूर्वक आरोहण किया ।

बच्चों का फिल्मी संस्थान

बंगलौर के समीप में सात-आठ करोड़ रुपये व्यय करके एशिया का सबसे बड़ा 'चिल्ड्रन फिल्म कॉम्प्लेक्स' स्थापित किया जानेवाला है । इस सम्बन्ध में भेंटवार्ता के दौरान 'चिल्ड्रन फिल्म सोसाइटी ऑफ इंडिया' के अध्यक्ष श्री अमोल पालेकर ने कहा, "यहां बच्चों के लिए तो फिल्मों का निर्माण होगा ही, लेकिन बच्चों के द्वारा भी फिल्में बनायी जायेंगी ।"

अत्यन्त प्राचीन राक्षस छिपकलियाँ

अरिजोना रेगिस्तान में २२५० लाख वर्ष पूर्व का डिनोजार नाम की एक राक्षस छिपकली का कंकाल मिला है । केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के विशेषज्ञ राबलांग का विचार है कि यही सर्वाधिक प्राचीन राक्षस छिपकली का कंकाल है ।

क्या आप जानते हैं ?

१. हमारे देश में सर्वप्रथम प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्र का क्या नाम है ?
२. अमरीका में रबर-निर्माण का केंद्रीय स्थान क्या है ?
३. श्रीलंका में वह कौन सा पर्वत है जिसे हिन्दू, मुस्लिम और बौद्ध पवित्र मानते हैं ?
४. गौतम बुद्ध का जन्म लुम्बिनी वन में हुआ था, पर यह बताइये कि उनका निर्वाण-स्थल कौन-सा है ?
५. क्या आप बता सकते हैं कि ई० पू० दूसरी शताब्दी में योगसूत्रों की रचना किस ऋषि ने की ?

(उत्तर पृष्ठ ६५ पर देखें)

अन्धकासुर

अन्धक शब्द् का अर्थ अंधा भले ही हो, लेकिन अन्धकासुर अंधा नहीं था। अहंकारवश अन्धाधुंध व्यवहार करने के कारण उसका नाम अन्धक पड़ गया था। उसने घनघोर तपस्या करके ब्रह्मा से यह वर प्राप्त किया था कि उसके संकल्प मात्र से ही उसकी आँखें एक हज़ार हो जायें और भुजाएँ दो हज़ार।

अन्धक स्वभाव से ही अहंकारी था, अब तो और भी घमंडी बनकर सज्जन पुरुषों, ऋषि-मुनियों तथा देवताओं को सताने लगा। सब उसके अत्याचारों से आतंकित हो उठे। तब और कोई उपाय न देखकर सब ऋषि-मुनि और देवगण नारदमुनि के पास पहुँचे और उनसे सहायता की प्रार्थना की।

नारद ने एक उपाय सोचा और मन्दार पर्वत पर गये। उन्होंने अनुपम सुगंध फैलानेवाले मन्दार पुष्पों की माला धारण की और अन्धक के महल में पहुँचे।

उन सुगन्धित सुमनों की सुवास पर मुग्ध होकर अन्धक ने नारद से पूछा, "मुनिवर, ये पुष्प कहाँ खिलते हैं ?"

"मन्दार पर्वत पर !" नारद ने मुस्करा कर कहा।

इतना सुनते ही अन्धक उन पुष्पों के लिए मन्दार पर्वत की दिशा में चल पड़ा। मन्दार पर्वत शिव का था। शिवभक्तों एवं विष्णुभक्तों के अलावा और किसी को भी उस पर्वत पर चढ़ने का निषेध था।

अन्धक अहंकार से अंधा था ही। वह इस निषेध-नियम की अवज्ञा कर मन्दार पर्वत पर चढ़ने लगा। शिव क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अन्धक पर अपने त्रिशूल का प्रहार किया। दूसरे ही क्षण भयानक गर्जना हुई और अन्धकासुर उस पर्वत पर से घाटी में गिर कर मर गया।

[गरुड़ पक्षी के पंखों में छिपा हुआ चंद्रवर्मा अपनी पकड़ ढीली होने के कारण नीचे सरोवर में गिर पड़ा। फिर मगरमच्छों के हमलों से बचकर वह सरोवर के किनारे के पास स्थित वृक्षों के समूह के नीचे पहुँच गया। अर्द्धरात्रि के बाद चंद्रवर्मा मांत्रिक शंखु के निवास बने पहाड़ पर चढ़ने के लिए निकला। अभी वह कुछ ही दूर गया था कि उसे पहाड़ की तलहटी में चट्टानों के बीच से जादूगरनी कापालिनी की कराहभरी आवाज़ सुनाई दी। आगे पढ़िये...]

दो शिलाओं के बीच कराहती हुई कापालिनी को देखकर चंद्रवर्मा चकित रह गया। उसे अग्निपक्षी और गरुड़ों के बीच हुई बातचीत का तत्काल स्मरण हो आया। उसने भाँप लिया कि उन गरुड़ पक्षियों के चंगुल में पड़कर कापालिनी यहां तक आ पहुँची है।

"कापालिनी, तुम्हें ऐसे घाव तो नहीं हुए कि तुम्हारे प्राणों को ख़तरा हो ? गरुड़ पक्षी कहाँ हैं ?" चंद्रवर्मा ने पूछा।

कापालिनी धीमी आवाज़ में बोली, "चंद्रवर्मा, ज़ोर से मत बोलो ! हमें तुरन्त किसी समीप की गुफ़ा में चलना चाहिए। वहाँ मैं तुम्हें सारी बातें बता दूंगी। वैसे मुझे जान का कोई ख़तरा नहीं है ! तुम निश्चिन्त हो कर मुझे थोड़ा हाथ का सहारा दो, मैं उठ कर चल सकती हूं।"

चंद्रवर्मा ने झुक कर अपने दायें हाथ का सहारा दिया और कापालिनी को खड़ा किया।

कापालिनी चंद्रवर्मा के हाथ का सहारा लेकर धीरे-धीरे चलने लगी, फिर सामने दूर कुछ देख कर बोली, "बेटा चंद्रवर्मा, बाँसों के इस झुरमुट के पीछे कोई गुफ़ा-सी नज़र आ रही है। चलो, वहीं चलते हैं।"

चंद्रवर्मा और कापालिनी छोटी-मोटी शिलाओं को पार करते हुए कुछ ही देर में पहाड़ की तलहटी की एक अंधेरी गुफ़ा के पास पहुँचे। गुफ़ा का द्वार अत्यन्त संकरा था और वह चारों तरफ़ से बाँस के झुरमुटों और दूसरे जंगली झाड़-झंखाड़ों से ढंकी हुई थी। उन दोनों ने सिर झुकाकर गुफ़ा के अन्दर प्रवेश किया।

भीतर से गुफ़ा अत्यन्त विशाल थी और उसकी छत में चारों तरफ़ दरारें नज़र आ रही थीं उन दरारों से पतली रोशनी जहां-तहां फैल रही थी।

कापालिनी गुफ़ा के कोने में दीवार से सटकर बैठ गयी। चंद्रवर्मा ने उससे पूछा, "कापालिनी, यह बताओ, तुम्हारे यहां पहुँचने की बात क्या मांत्रिक शंखु को मालूम है?"

कापालिनी मुस्करा उठी। ऐसा प्रतीत होता था कि उसे जान का ख़तरा बिलकुल भी नहीं है। वह बोली, "चंद्रवर्मा, अगर शंखु को मेरे इस प्रदेश में होने की बात मालूम होती तो वह कभी का मेरा वध कर डालता। मैं कल सुबह से उन शिलाओं के बीच पड़ी हुई हूँ। मुझ पर अचानक हमला करके उन गरुड़ पक्षियों ने मुझे पकड़ लिया था, पर कालनाग ने उन दोनों पक्षियों के साथ भयंकर युद्ध करके उस को मार डाला।"

"तब तो हमें डरने की कोई बात नहीं है। अभी रात बाकी है। मैं इस अंधेरे के रहते ही मांत्रिक शंखु के मंत्रगृह का पता लगाता हूँ।" यह कह कर चंद्रवर्मा तपाक से उठ खड़ा हुआ।

कापालिनी चंद्रवर्मा को रोक कर बोली, "चंद्रवर्मा, तुम क्या अग्निपक्षी के बारे में भूल गये? रात के समय अगर हमें किसी से डरना है, तो वह अग्निपक्षी से ही। दिन के समय शंखु से ख़तरे की आशंका बढ़ जाती है। आज की रात अगर हम अग्निपक्षी से सदा के लिए अपना पिंड छुड़ा लें तो हमारी कुशल समझो,

वरना नहीं। हमारी तरफ़ से उसका अंत करने के लिए कालनाग पूरा प्रयत्न कर रहा है।"

"कालनाग भी क्या तुम्हारे साथ यहां पर आया हुआ है?" चंद्रवर्मा ने विस्मित होकर पूछा।

चंद्रवर्मा का सवाल सुनकर कापालिनी हँस पड़ी, फिर बोली, "कुमार, मैंने समझ लिया कि कालनाग मुझसे बढ़कर तुम्हारे प्रति ज़्यादा श्रद्धा-भक्ति रखता है। इसीलिए तुम्हें यहां अचानक देखकर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। यही कारण है कि मैंने तुमसे यह प्रश्न नहीं किया कि तुम इतनी जल्दी यहां कैसे आ पहुँचे? तुम्हारा सारा वृत्तान्त कालनाग ने मुझे बताया है। जब मैंने उसके मुँह से सुना कि तुमने जंगल में एक विचित्र वृक्ष का फल तोड़कर खा लिया है, तो मैं समझ गयी थी कि तुम सकुशल यहां पहुँच जाओगे।"...

कापालिनी की बात अभी समाप्त भी न हो पायी थी कि बाहर का सारा पर्वत-प्रदेश तेज़ चकाचौंध करनेवाले प्रकाश से भर उठा। गुफा की दरारों से रोशनी की तीक्ष्ण किरणें अंदर आने लगीं।

चंद्रवर्मा चकित होकर गुफ़ा के द्वार तक पहुँचा और बाहर झाँक कर देखने लगा। गुफा के मुख को चारों तरफ से घेर कर फैले बाँसों के झुरमुटों के पीछे उसे अग्निपक्षी दिखाई दिया। दूसरे ही क्षण उसने देखा, कालनाग अपनी दाढ़ें फैलाकर अग्निपक्षी पर हमला कर रहा है।

"कापालिनी, कालनाग अग्निपक्षी से लड़ रहा है। मैं कालनाग की मदद करूँगा।" चंद्रवर्मा बोला।

"नहीं, कुमार, नहीं।" चंद्रवर्मा को निषेध कर कापालिनी गुफा के मुख-द्वार तक पहुँची और बाहर झाँक कर बोली, "मेरा विश्वास है कालनाग शंखु के सेवक इस अग्निपक्षी का अन्त करेगा। यदि ऐसा न हुआ तो हम दोनों के लिए ही ख़तरा है। निश्चय ही अग्निपक्षी समझ गया है कि मैं इस प्रदेश में आ पहुँची हूं। यह ख़बर वह अपने मालिक शंखु को पहुँचाये, उससे पहले ही उसका अंत हो जाना हम दोनों के लिए हितकर है।"

कापालिनी ऐसा बोल ही रही थी कि दोनों ने

देखा कि कालनाग और अग्निपक्षी की लड़ाई प्रचंड हो गयी है। दोनों एक-दूसरे का अंत करने पर तुले हुए है।

अग्निपक्षी अपनी तीक्ष्ण चोंच से कालनाग के तीनों सिरों को छिन्न भिन्न करने की कोशिश कर रहा था और कालनाग अग्निपक्षी के पैने नाखूनों की पकड़ से सर्र से फिसल कर अपनी पैनी दाढ़ों से उसके कंठ को कसने का प्रयत्न कर रहा था।

अग्निपक्षी के शरीर से चिनगारियां फूट रही थीं जिससे कालनाग का शरीर झुलसा जा रहा था। कालनाग के मुँह से बाहर आ रही जहरीली नीली फूत्कारों से अग्निपक्षी मूच्छित होने लगता था, फिर संभल कर लड़ने के लिए भिड़ जाता था।

"इन दोनों की लड़ाई की आवाज़ अगर मांत्रिक शंखु के कानों में पड़ गयी तो समझ लो, हम दोनों को कोई नहीं बचा सकेगा।" चंद्रवर्मा ने अपने मन का सन्देह प्रकट किया।

"ऐसा होने की संभावना नहीं है। अग्निपक्षी के भरोसे शंखु लम्बी तानकर सोता है। उसका विश्वास है कि रात के समय जब उसका विश्वास पात्र सेवक अग्निपक्षी पहरा देता है तब उसके लिए खतरे की कोई आशंका नहीं है। इस कारण वह अंधेरा होते ही सोने की तैयारी करता है और सूर्योदय से थोड़ी देर पहले जागता है। मैं उसकी आदतों से भलीभाँति परिचित हूं।" कापालिनी ने कहा।

तभी अग्निपक्षी के चिल्लाने की आवाज़ आयी, पर ऐसा लगा, मानो उसकी चीख उसके गले में ही दब गयी है। कापालिनी और चंद्रवर्मा ने देखा, उसका सिर एक ओर लुढ़क गया था।

कालनाग ने अपनी दाढ़ों से उसके कंठ को कस रखा था। अग्निपक्षी को निढाल देख कालनाग ने अपनी पकड़ ढीली की और स्वयं भी उसकी बगल में लुढ़क गया।

"जय कालनाग की... वीर नाग की जय!" इस तरह अपने मित्र कालनाग का नारा बुलन्द कर के चंद्रवर्मा तालियां बजाने को हुआ, पर तुरन्त उसने अपने को संयमित किया और

उत्साह-पूर्वक गुफा से बाहर कूद पड़ा। कापालिनी भी अपनी सारी शक्ति बटोर कर चंद्रवर्मा के पीछे-पीछे गुफा के बाहर निकल आयी।

चंद्रवर्मा और कापालिनी जब कालनाग के समीप पहुँचे, तब वह मृत अग्निपक्षी की बगल में शिथिल होकर पड़ा हुआ था। उसके शरीर पर कई घावों से लगातावर खून बह रहा था।

कालनाग ने जैसे ही कापालिनी और चंद्रवर्मा को अपने निकट देखा तो उसे अपनी विजय का अहसास हुआ और वह उत्साह में भर कर अपने तीनों सिरों को ऊपर उठाकर हिलाने लगा।

चंद्रवर्मा कालनाग के समीप पहुँचा और प्यार से उसके शरीर पर हाथ फेरने लगा। अग्निपक्षी के शरीर की चिनगारियों से झुलस जाने के कारण कालनाग का शरीर एक दम काला हो गया था। कहीं-कहीं उसकी चमड़ी निकल आयी थी और कहीं घावों से खून टपक रहा था। अपने सेवक की यह दशा देख कापालिनी का हृदय दया से कातर हो गया। उसने प्यार से कालनाग के सिरों का स्पर्श किया और बोली, "कालनाग, आज से तुम्हारी सारी यातनाएं दूर हो गयीं। शंखु के मंत्र-गृह से अपूर्व शक्तियों वाले उस शंख को पाते ही मैं तुम्हें मानव का रूप प्रदान करूंगी। तुम्हें सदा केलिए आजादी मिल जाएगी, इसके बाद तुम जहां चाहो, जा सकते हो!"

शंखु के मंत्र-गृह का नाम सुनकर चंद्रवर्मा को होश आया। उसने पूरब की दिशा में अपनी

आँखें दौड़ायीं और चकित होकर बोला, "कापालिनी, ऐसा मालूम होता है कि सूर्योदय के होने में अब अधिक समय नहीं है। अब मैं उस मांत्रिक शंखु के मंत्र-गृह की तरफ़ चलता हूं।"

कापालिनी ने भी पूरब के आसमान की तरफ़ देखा, फिर बोली, "चंद्रवर्मा, तुम्हारे लिए इस समय शंखु के मंत्र-गृह में पहुँचना उचित नहीं होगा। शंखु का अंत करने के लिए मैंने एक उपाय सोच रखा है।"

"क्या है वह उपाय, कापालिनी!" चंद्रवर्मा ने पूछा।

"शंखु प्रतिदिन सूर्योदय के समय अपनी इस पहाड़ीके पूरबी छोर पर पहुँचता है और वहाँ एक शिला पर खड़ा होकर सभी दिशाओं में अपना सिर घुमाता हुआ मंत्रोच्चार करता है। उस शिला की चौड़ाई एक फुट की है और उसकी ऊँचाई भी केवल एक फुट की है। उस शिला के नीचे क़रीब एक हज़ार फुट गहरी खाई है। अगर तुम मेरे बताये अनुसार सब काम कर सके तो शंखु को शिला पर से नीचे की खाई में गिराया जा सकता है। उस खाई के नोकदार पत्थर उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देने के लिए काफ़ी हैं।" कापालिनी कुछ सोचते हुए बोली।

"कापालिनी, तुम मुझे अपनी पूरी योजना समझाओ! जल्दी करो, अब अधिक समय नहीं है।" चंद्रवर्मा उत्साहित हो उठा।

"लो, पास आओ, मैं सब बता देती हूं!" कापालिनी ने कहा।

चंद्रवर्मा कापालिनी के एक दम निकट पहुँच गया। कापालिनी उसके कान के पास मुँह ले जाकर कुछ समझाती रही, फिर बोली, "यह कार्य अत्यन्त गुप्त से पूरा करना है। इसमें अगर थोड़ी सी भी भूल-चूक होगयी तो हमारा सर्वनाश निश्चित है।"

चंद्रवर्मा क्षण भर कुछ सोचता हुआ खड़ा रहा। इसके बाद वह पास के एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर पूरब दिशा की तरफ आँखें फाड़कर देखने लगा। थोड़ी देर बाद पेड़से उतर कर उसने कापालिनी के पास जाकर बड़े इतमीनान

से कहा, "कापालिनी, सूर्योदय के होने में अब विलंब नहीं है, मैं अपने काम में प्रवृत्त होता हूँ। तुम और कालनाग गुफा में पहुँचकर विश्राम कर लो !"

चंद्रवर्मा ने म्यान से तलवार खींची और घने वृक्षों की ओट हो गया। चंद्रवर्मा की तलवार के वारों से देखते-देखते पेड़ों की जटाओं का ढेर लग गया। उसने उन जटाओं में गांठ लगानी शुरू की और कुछ ही देर में एक बड़ी लंबी रस्सी तैयार कर ली। उस रस्सी के एक छोर को अपने कंधे पर डालकर वह तेज़ गति से पहाड़ी पर चढ़ने लगा।

पहाड़ी के पूरबी छोर की उस एक वर्ग फुट की शिला को उसने रस्सी के उस छोर से बाँध दिया। उसे कापालिनी का एक-एक शब्द याद था।

मांत्रिक शंखु इसी शिला पर खड़े होकर ही तो चारों दिशाओं की ओर मुख घुमाता हुआ मंत्रोच्चार करता है।

अपना काम पूरा करके चंद्रवर्मा गुफा के पास पहुँचा। गुफा के अन्दर कापालिनी बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रही थी। चंद्रवर्मा को देखकर वह झट बाहर निकल आयी और बोली, "चंद्रवर्मा हमारा आयोजन सफल हुआ ?"

"सफलता की बात अभी से मैं कैसे कह सकता हूं ? रस्सी के एक छोर को मैंने उस शिला से बाँध दिया है, दूसरा छोर पहाड़ी के निचले हिस्से में है। पर कापालिनी, मुझे एक शंका होती है— अगर हम उस शिला को पूरब की दिशा में खींचेंगे, तभी वह शंखु को खाई में गिरा पायेगी और उसके शरीर के टुकड़े हो सकेंगे ! वरना वह दूसरी तरफ़ गिरेगा और हमारी जानका ग्राहक बन जाएगा।"

"चंद्रवर्मा ने कापालिनी के आदेश का पालन किया। वह उसे लेकर पहाड़ी की तलहटी में पहुँचा और शिला में बंधी उस रस्सी के दूसरे छोर को दिखा दिया।

कापालिनी ने उस रस्सी का स्पर्श किया, फिर पूरब दिशा के पहाड़ी छोर पर दृष्टिपात करके बोली, "चंद्रवर्मा, शंखु मंत्रोच्चार के लिए जिस शिला पर खड़ा होता है, वह पहाड़ी के

ऐसे छोर पर है कि ज़रा-सा खिसकाने पर भी नीचे की खाई में गिर जायेगी। इस बात में ज़रा भी सन्देह नहीं है, तुम अपने मन की शंका निकाल दो।"

अचानक कापालिनी की आँखें फैल गयीं। उसने चंद्रवर्मा के कंधे का स्पर्श कर धीरे से कहा, "लो, देखो, शंखु शिलाके पास आ गया है। उसके हाथ में मंत्र-दंड देख रहे हो न, कैसा चकाचौंध करता चमक रहा है! वह ज्यों ही शिला पर पैर रखे, तुम रस्सी को पूरे ज़ोर से खींच देना!"

चंद्रवर्मा ने पहाड़ी के ऊपर नज़र डाली। पूरब के आसमान में लालिमा फैल रही थी। उस लाल रोशनी में चंद्रवर्मा को मांत्रिक शंखु का विकृत भयानक आकार दिखाई दिया।

एक क्षण के लिए चंद्रवर्मा सिर से पैर तक काँप उठा, पर तुरन्त ही उसने संभलकर रस्सी के छोर को दोनों हाथों से पकड़ लिया। तब तक शंखु पहाड़ी छोर वाली उस शिला तक पहुँच गया था। उसने उस पर पैर रखा और अपने मंत्र-दंड को उदित होनेवाले सूर्य की ओर उठाया।

"चंद्रवर्मा, हमारेलिए यही एक अच्छा मौक़ा है! जल्दी करो! रस्सी को ज़ोर से खींच कर एक दम उसको ढीला करके छोड़ दो।" कापालिनी के स्वर से आतुरता फूट रही थी।

चंद्रवर्मा ने अपने हाथ की रस्सी को सारी ताक़त लगाकर ज़ोर से खींचा और एकदम छोड़ दिया। रस्सी लुढ़कती शिला के साथ खिंचती चली गयी। मांत्रिक शंखु के दोनों हाथ ऊपर उठ गये और पैर हवा को मथने लगे।

शंखु बड़े भीषण स्वर में चिल्लाया, "धोखा है, दग़ा है!" उसके हाथ से छूटा मंत्रदंड बिजली की गति से जाकर मंत्रगृह से टकरा गया। मंत्र-गृह नींव-सहित हवा में उठ कर भयानक ध्वनि के साथ सरोवर के बीच में गिर गया।

मांत्रिक शंखु पहाड़ी की एक हजार फुट गहरी ख़ाई में नुकीली चट्टानों पर औंधे मुँह गिर पड़ा। (क्रमशः)

मांत्रिक का सिंहासन

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये। पेड़ पर से शव उतार कर उन्होंने कंधे पर डाला और हमेशा की तरह श्मशान की तरफ़ चलने लगे। तब शव में वास करने वाले बेताल ने पूछा— "राजन्, इस अर्द्ध रात्रि के समय इस भयानक श्मशान में आप जो यह श्रम उठा रहे हैं यह तो कहीं किसी परोपकार के लिए नहीं है? यह मेरा भ्रम भी हो सकता है! क्योंकि मनुष्य की प्रकृति न केवल विचित्र है, बल्कि जटिल भी है। कोई भी मनुष्य सही ढंग से दूसरों को समझने का प्रयत्न नहीं करता, यहां तक कि वह स्वयं अपने को समझने का प्रयत्न भी नहीं करता। फिर भी सब इस भ्रम में रहते हैं कि हम सबको समझते हैं। इसी प्रकार यह जगन्नाटक चल रहा है। श्रीपाल भी एक ऐसा ही आदमी था। अपनी समझ को लेकर उसका मोहभंग कैसे हुआ, मैं आप को उसकी कहानी सुनाता हूं। श्रम को भुलाने के लिए आप

बेताल कथा

सुनिये !"

बेताल ने कहानी सुनाना आरंभ किया:

रामपुर गांव में शीतल नाम का एक व्यक्ति खेतीबारी करके अपने दिन बिताता था। लोगों का कहना था कि वह दृढ़ लगन वाला है। एक बार उस प्रदेश की राजधानी कौशाली में नया महल बनवाने के लिए नींव खोदी जा रही थी कि ज़मीन के नीचे से एक विशाल सिंहासन बाहर निकला। उसके बारे में यह बात सर्वत्र प्रसारित हो गयी कि जो भी मनुष्य उस सिंहासन पर बैठता है, उसे तत्काल मंत्र-शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं। शीतल को भी यह समाचार मालूम हुआ।

उस सिंहासन का स्वामी शक्तिरूप नाम का एक मांत्रिक था, जिसने सैंकड़ों वर्ष पूर्व अपने मंत्रों के प्रभाव से सारे संसार को थर्रा दिया था। जैसे ही वह सिंहासन खुदाई में प्राप्त हुआ, राजा ने उसे क़िले के एक विशेष भाग में दर्शन के लिए रखवा दिया। उस सिंहासन को देखने के लिए भारी संख्या में लोग राजधानी कौशाली में आने लगे।

शीतल के मन में भी कौशाली जाकर मांत्रिक के उस सिंहासन को देखने की इच्छा जागृत हुई। शीतल ने उसके बारे में अनेक दंत-कथाएं सुनी थीं। उसे किसी ने बताया था कि उस सिंहासन की ओर टकटकी बाँधकर देखने पर मांत्रिक शक्तिरूप की आकृति छाया रूप में उस पर बैठी हुई दिखाई देती है। इसके अलावा, कोई साधारण मनुष्य उस सिंहासन पर बैठ नहीं सकता। केवल वही व्यक्ति उस पर बैठ सकता है जो तीन बार सिंहासन की परिक्रमा करके अपने मन में यह चिन्तन करे, "हे शक्तिरूप, मैं तुम्हारा सेवक हूं। मैं तुम्हारी महानता से परिचित होने के लिए इस सिंहासन पर आरूढ़ हो रहा हूं, इस पर अधिकार प्राप्त करने के लिए नहीं।"

शीतल का एक रिश्तेदार श्रीपाल राजदरबार में एक ओहदेदार था। वह प्रतिदिन सुबह और कभी-कभी शाम को भी राजा को पुराण सुनाता था। शीतल मांत्रिक का सिंहासन देखने के विचार से कौशाली पहुँचा और सीधे श्रीपाल के घर पहुँच गया। श्रीपाल ने उसका स्वागत किया और आने का कारण पूछा तो शीतल ने अपनी

इच्छा प्रकट कर दी ।

"शीतल, अगर तुम केवल इसी काम के लिए आये हो, तब तो तुमने बडी भूल की है, क्योंकि मांत्रिक के उस सिंहासन को देखने की अनुमति इस समय सबको नहीं मिल रही है। इसके पहले कुछ दर्शनार्थियों ने सिंहासन के प्रति अभद्र व्यवहार किया था, इस कारण राजा ने रोक लगा दी और अब केवल विशेष राजाज्ञा प्राप्त लोगों को ही सिंहासन देखने का मौक़ा दिया जा रहा है।" श्रीपाल ने स्थिति बता दी।

"तो तुम मुझे राजाज्ञा दिलवा दो !" शीतल ने आग्रह किया ।

श्रीपाल ने मन्दहास करके कहा, "पागल, तुम्हें क्या मालूम, राजा से आज्ञा दिलाने के लिए बड़ा प्रभाव चाहिए । मैं पुराण-पाठ करके अपनी गुज़र करता हूँ। राजदरबार में मेरा ऐसा प्रभाव नहीं है ।"

शीतल ने श्रीपाल की बात का कोई प्रतिवाद नहीं किया और मौन रह गया। दूसरे दिन उसने पूरे नगर का भ्रमण किया और सिंहासन देखने के उपायों के बारे में अनेक जगह पूछताछ की। जब कुछ लोगों को यह पता लगा कि शीतल श्रीपाल के घर ठहरा हुआ है तो उन्होंने एक स्वर से यही कहा, "तब तो इसमें कोई मुश्किल ही नहीं है। श्रीपाल का दरबार में अच्छा प्रभाव है। सिंहासन देखने के लिए उसका प्रभाव पर्याप्त है ।"

उस रात शीतल ने श्रीपाल से कहा, "सब लोग यही बताते हैं कि राजा के यहाँ तुम्हारा अच्छा प्रभाव है ! क्या तुम मेरी यह छोटी-सी मदद नहीं कर सकोगे ?"
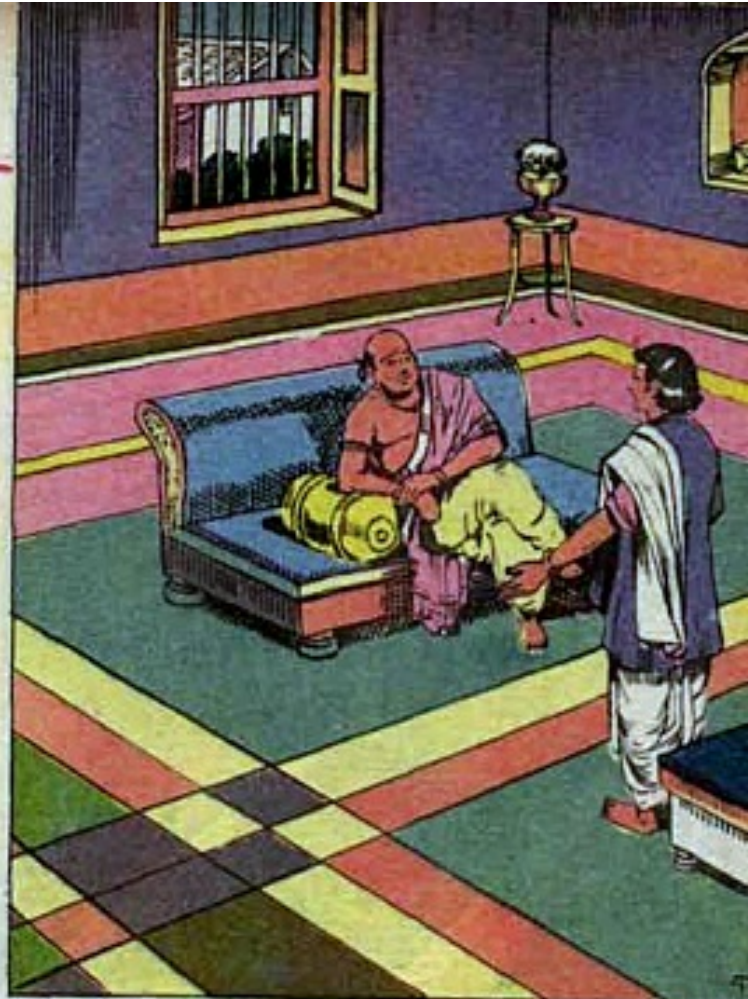
"यह तो लोगों का भ्रम है। राजदरबार में मेरी कुछ नहीं चलती। तुम इस बात को लेकर मुझे ज़्यादा परेशान मत करो !" श्रीपाल ने साफ़ कह दिया ।

शीतल ने समझ लिया कि श्रीपाल के द्वारा उसकी इच्छा पूरी होने वाली नहीं है। पर वह अपना काम साधे बिना गाँव नहीं लौटना चाहता था । क़िले के जिस कक्ष में मांत्रिक का सिंहासन रखा हुआ था, वहां पहरा देनेवाले सैनिकों में वीरभद्र नाम का एक सैनिक भी था। श्रीपाल ने उसके साथ जान-पहचान कर ली। वीरभद्र ने शीतल को आश्वासन दिया, "कल
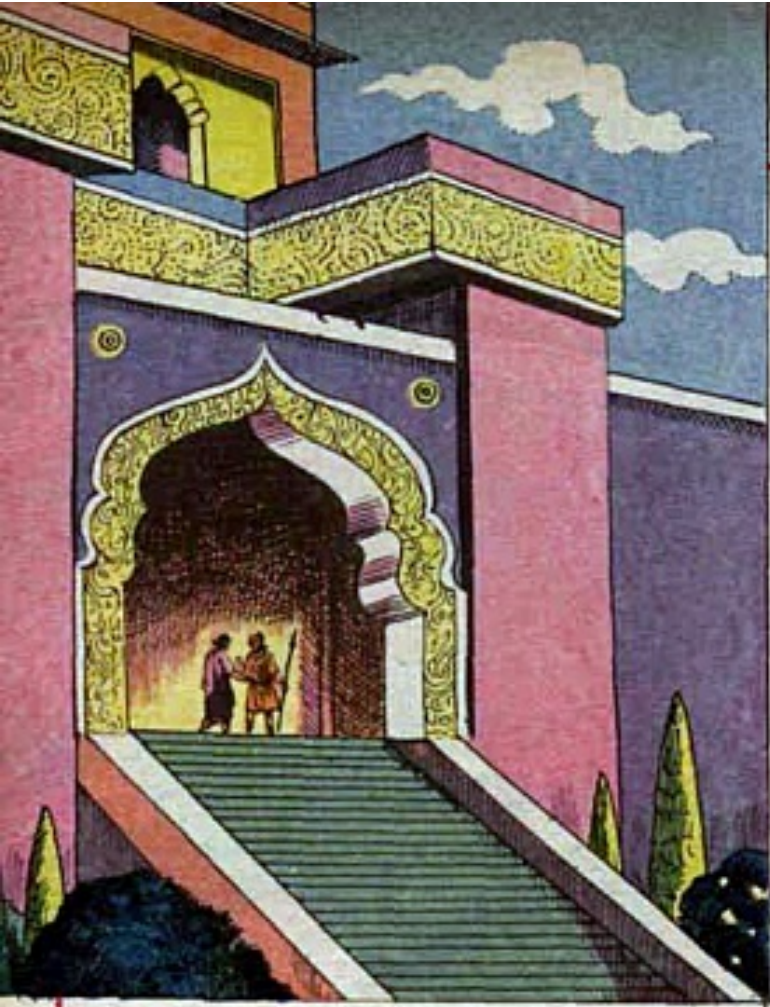
और दूसरे दिन राजा को पुराण सुनाने के पूर्व उनके सामने हाथ जोड़कर बोला, "महाराज, आपने मांत्रिक के सिंहासन की रक्षा के लिए जो प्रबंध किया है, वह पर्याप्त नहीं है । कुछ पहरेदार अपने परिचितों को उस विशेष कक्ष में मांत्रिक का सिंहासन दिखाने के लिए समय-असमय ले जाते हैं ।"

राजा ने तत्काल एक विशेष कर्मचारी को बुलाकर यह आज्ञा दी, "मंत्री के पास जाओ और मेरा यह आदेश दो कि क़िले के अन्दर के उस विशेष भाग का पहरा देने वाले सैनिक मांत्रिक के सिंहासन वाले कक्ष में प्रवेश न करें, इसकी व्यवस्था तुरन्त कर दी जाये !"

श्रीपाल सन्तुष्ट होकर घर लौटा । उस दिन शाम को श्रीपाल शीतल को क़िले के अन्दर लिवा ले गया । शीतल अपने परिचित सैनिक वीरभद्र के पास पहुँचा तो वह असहाय भाव से बोला, "दोस्त, मुझे माफ़ कर दो । आज से यह नियम अमल में आया है कि क़िले के अन्दर पहरा देने वाले सैनिक भी मांत्रिक के सिंहासन वाले कक्ष में प्रवेश नहीं कर सकते !"

शीतल ने निराश होकर पूछा, "दोस्त वीरभद्र, क्या कोई और उपाय नहीं है ?"

वीरभद्र ने कहा, "इस मामले में सिवाय मंत्री के और कोई तुम्हारी मदद नहीं कर सकता ।"

दूसरे दिन सुबह ही सुबह शीतल मंत्री के भवन में गया और भवन से बाहर निकलने वाले

तुम क़िले में आजाओ । मैं अवश्य तुम्हें मांत्रिक का सिंहासन दिखला दूंगा ।"

रात के समय शीतल ने यह बात बड़े गर्व से श्रीपाल को सुनायी और कहा, "भाई श्रीपाल, मैं अपना काम साध ही लिया । अब तो तुम्हें बस इतना करना है कि तुम मुझे क़िले के अन्दर पहुँचा दो !"

शीतल के मुख से सारी बात सुनकर श्रीपाल का सिर चकरा गया । उसके द्वारा जो काम नहीं बना, उसे अगर शीतल ने दूसरे की मदद से साध लिया तो वह गाँव लौटकर सब पर यह बात प्रकट करेगा । मेरे लिए यह अत्यन्त अपमान की बात होगी !

श्रीपाल ने मन ही मन कुछ निश्चय किया

प्रत्येक व्यक्ति को साष्टांग प्रणाम करने लगा। शीतल का व्यवहार मंत्री को कुछ विचित्र-सा प्रतीत हुआ। मंत्री ने शीतल को अन्दर बुलवा लिया और उसके इस व्यवहार का कारण पूछा।

"महानुभाव, मैं मांत्रिक का सिंहासन देखने के कुतूहल से बहुत दूर के एक गाँव रामपुर से यहां आया हूं। मुझे मालूम हुआ कि इस काम में आपके अतिरिक्त और कोई मेरी मदद नहीं कर सकता। पर आपको सन्तुष्ट करने के लिए मेरे पास कुछ भी तो नहीं। आपके परिवार के सदस्यों के प्रति श्रद्धा का भाव प्रदर्शित करने के अतिरिक्त मैं कर ही क्या सकता हूँ?" शीतल ने विनीत होकर कहा।

शीतल का उत्तर सुनकर मंत्री अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने शीतल के आवास-निवास का पता पूछा। जब उसे पता लगा कि वह श्रीपाल के घर ठहरा हुआ है और उसका रिश्तेदार है तो उसने कुछ विस्मित होकर कहा, "ऐसी बात है तब तो तुम्हें अपनी इच्छा पूरी करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। श्रीपाल को क़िले के अन्दर सर्वत्र जाने की अनुमति है। उसी के साथ चले जाओ!"

मंत्री के मुख से भी यह बात सुनकर शीतल को बड़ी चोट लगी। उसने तड़पकर कहा, "महानुभाव, हर कोई यही कहता है। लेकिन श्रीपाल मानता नहीं है। अगर आप कृपा करके कल उससे यह कह दें कि आपने मुझे विशेष रूप से सिंहासन वाले कक्ष में जाने की अनुमति प्रदान की है तो सब काम बन जायेगा और मेरी

इच्छा पूरी हो जायेगी।"

मंत्री ने स्वीकार कर लिया और शीतल न घर लौटकर सब बात बतायी और बड़े उत्साह के साथ श्रीपाल से कहा, "तुम जानते हो, जब मैं किसी बात का निश्चय करता हूं तो उस पर अटल रहता हूं और उसे किसी न किसी तरह पूरा करके ही छोड़ता हूं।"

श्रीपाल ने सोचा कि अगर शीतल किसी अन्य के प्रभाव से मांत्रिक के सिंहासन को देखने में सफल हो गया तो उसकी इज्जत धूल में मिल जायेगी। दूसरे दिन वह मंत्री से मिला और बोला, "महानुभाव, मैंने सुना है कि आपने मेरे सम्बन्धी शीतल को मांत्रिक का सिंहासन देखने के लिए विशेष अनुमति देने का

"शीतल, मैं नहीं जानता कि मंत्री महोदय ने तुम्हें क्या बताया है, लेकिन तुम्हें मांत्रिक का सिंहासन देखने की अनुमति नहीं मिली !"

श्रीपाल की बात सुनकर शीतल चकित रह गया। वह उसी समय मंत्री के भवन में गया। शीतल को आया देखकर मंत्री ने कहा, "सुनो, तुम श्रीपाल के रिश्तेदार हो। तुम उसकी इच्छा के विरुद्ध मांत्रिक के सिंहासन को नहीं देख सकते। मैं कारण तो नहीं जानता, पर न जाने क्यों, वह तुम्हें मांत्रिक का सिंहासन दिखलाना नहीं चाहता।" मंत्री ने श्रीपाल से हुई अपनी सारी बातचीत शीतल को बतलादी।

शीतल ने घर लौट कर श्रीपाल से कहा, "मैं अभी तुरन्त गांव जा रहा हूं।"

"तुम निराश मन से मत जाओ ! मैंने तुम्हें पहले ही समझाया था कि केवल लगन होने से ही सब काम पूरे नहीं हो सकते। मैंने स्पष्ट कह दिया था कि मांत्रिक का सिंहासन देखना तुम्हारे लिए संभव नहीं है।" श्रीपाल ने कहा।

"तुम चाहते तो संभव था !" शीतल ने लंबी सांस लेकर कहा।

"मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि ऐसा प्रभाव मैं नहीं रखता।" श्रीपाल ने वैसे ही ठंडे स्वर में कहा।

"अगर तुम्हारा प्रभाव न होता तो मुझे मांत्रिक का सिंहासन देखने में कोई कठिनाई न होती। दरअसल यह तुम्हारा प्रभाव ही है, जो मेरी इच्छा की पूर्ति में बाधक बन गया है।"

आश्वासन दिया है। यह तो बड़ी खुशी की बात है। लेकिन अगर वहां कोई असंगत घटना हो गयी तो मेरी कोई जिम्मेदारी न होगी। उसका सारा उत्तरदायित्व आपका होगा।"

श्रीपाल की बातों से मंत्री ने यह निष्कर्ष निकाला कि शीतल विश्वसनीय व्यक्ति नहीं है। अगर ऐसा होता तो श्रीपाल को शीतल से कोई शत्रुता तो थी नहीं, वह स्वयं भी उसे सिंहासन दिखलाने का प्रबंध कर सकता था। सब सोच-समझकर मंत्री ने कहा, "अगर तुम अपने रिश्तेदार की जिम्मेदारी नहीं ले सकते तो मैं एक अजनबी की जिम्मेदारी कैसे ले सकता हूं ! मैं क्यों इस झंझट में पड़ूँ ?"

श्रीपाल ने घर लौटकर शीतल से कहा,

शीतल ने आवेश में आकर कहा ।

यह जवाब सुनकर श्रीपाल चौंक उठा । उसने दूसरे ही दिन शीतल को मांत्रिक का सिंहासन देखने का प्रबंध कर दिया ।

बेताल ने अपनी कहानी सुनाकर कहा, "राजन, श्रीपाल के व्यवहार के बारे में आपका क्या विचार है ! पहले उसने शीतल को मांत्रिक का सिंहासन दिखलाने से इनकार किया, अनेक बाधाएं उपस्थित कीं, फिर वह शीतल की आवेशभरी बातें सुनकर बदल क्यों गया ! इस सन्देह का समाधान अगर आप जानकर भी न करेंगे तो आपका सिर फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा ।"

विक्रमार्क ने उत्तर दिया, "श्रीपाल जैसी मानसिक विचार धारा रखनेवाले लोग भी इस दुनिया में होते हैं । वे केवल अपने ही भरण-पोषण की बातों पर ध्यान देते हैं, दूसरों के मामलों में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं होती । वे केवल ऐसा विचार ही नहीं रखते, बल्कि इस बात को वे मान्यता के रूप में लेकर चलते हैं और अपने इस विश्वास को क़ायम रखने के लिए कई बार अन्य उपायों को भी काम में ले आते हैं । शीतल ने जब मांत्रिक का सिंहासन देखने के लिए श्रीपाल की मदद मांगी, तब उसने यह सोचकर मदद देने से इनकार कर दिया कि वह दूसरों के मामलों में अनावश्यक रूप से अपने प्रभाव का उपयोग क्यों करे ! लेकिन जब शीतल ने क्रोध में आकर कहा कि उसका प्रभाव ही उसकी बाधा बन रहा है तो उसे समझ में आया कि सचमुच ही वह अपने प्रभाव का दुरुपयोग कर रहा है । राजा तथा मंत्री के यहां प्रभाव रखने पर भी शीतल की एक साधारण इच्छा में रोड़ा बना हुआ है । शीतल की लगन भी श्रीपाल की समझ को बदलने में सहायक सिद्ध हुई । इसी कारण उसने अपना विचार बदल कर शीतल को मांत्रिक का सिंहासन दिखला दिया ।"

राजा के इस प्रकार मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा ।

(कल्पित)

विश्वास की सुगंध

स्वर्णपुरी के राजा विशाखदत्त बहुत लंबी बीमारी के बाद उठे थे। एक दिन शाम को कुछ प्रमुख नागरिक स्वस्थ हो रहे राजा का अभिनन्दन करने के लिए राजभवन में आये। उनके हाथों में मन्दिरों के पुष्प-पत्र थे और वह प्रसाद था जो उन्होंने अपने राजा के आरोग्य के लिए नैवेद्य के रूप में भगवान को अर्पित किया था। सबने राजा का वन्दन किया और उन्हें प्रसाद दिया।

तभी एक गड़रिया राजभटों के रोकते रहने पर भी राजा के निकट चला आया। उसने अपने कंधे पर से झोली उतारी और राजा को प्रणिपात कर निवेदन किया, "महाराज, लोग मुझे गोपाल पुकारते हैं। यहां से पाँच कोस दूर के मैदान में मैं पशुओं को चराता हूं। मुझे मालूम हुआ कि आप बीमार हैं तो मैंने मन्दिर में काली की पूजा की, नैवेद्य चढ़ाया और मैं आपके लिए प्रसाद ले आया हूं। कालीमाता का प्रसाद खाने पर भयंकर बीमारियां दूर हो जाती हैं।"

गड़रिये ने एक छोटी-सी थैली राजा को दी। राजा ने उसे खोला तो उसमें से दुर्गन्ध का गुबार-सा निकला। लोगों ने अपनी नाकें बंद कर लीं-और भय-चकित दृष्टि से राजा की तरफ़ देखने लगे। राजा के चेहरे पर मुस्कराहट थी। उन्होंने अपना कंठहार निकाला और गोपाल के गले में डाल दिया।

इस सारी घटना को राजा विशाखदत्त के एक बाल सखा कृष्णरूप ने भी देखा। उसने सबके चले जाने पर एकान्त में राजा से कहा, "महाराज, ऐसा दुर्गन्धभरा प्रसाद लानेवाले उस गड़रिये का आपने सबसे बढ़कर सम्मान किया, ऐसा क्यों ?"

"कृष्णरूप, उस प्रसाद से दुर्गंध भले ही निकल रही हो, लेकिन उस गड़रिये के अंदर विश्वास की सुगंध थी। वह पाँच कोस चल कर यहाँ आया था। उसके हृदय में विश्वास था कि इस प्रसाद को खाने पर मैं पूर्ण स्वस्थ हो जाऊँगा। उसकी सदाशयता, सद्भावना और निस्वार्थ प्रेम सब दुर्गन्धों से परे हैं। उनका मूल्यांकन नहीं हो सकता।" राजा विशाखदत्त ने उत्तर दिया।

मालविका

मंदाकिनी नदी के तट पर मरकतपुर नाम का एक गाँव था। वह गाँव अवश्य था, लेकिन अपने धार्मिक-सांस्कृतिक वातावरण और कार्यक्रमों के लिए पूरे विशाला प्रदेश में प्रसिद्ध था। इसी मरकतपुर की वासिनी थी नर्तकी मालविका। रूप और कला दोनों में ही वह अनुपम थी। सारा गाँव उसका अत्यन्त सम्मान करता था।

मरकतपुर में हर वर्ष मन्दाकिनी देवी के मन्दिर में एक उत्सव होता था, जिसे विजय-पर्व कहते थे। इस अवसर पर मालविका नृत्य किया करती थी। उसके नृत्य-प्रदर्शन के साथ ही उत्सव समाप्त हो जाता था।

विजय-पर्व आया। मालविका अस्वस्थ थी। वह नृत्य का प्रदर्शन नहीं कर सकी। उसके नृत्य के बिना उत्सव में कोई रंग नहीं आया। सभी नागरिक असन्तुष्ट होगये। वे दूसरे दिन मालविका को देखने गये और अपना दुख प्रकट कर कहने लगे, "मालविका, तुम्हारे नृत्य के बिना विजय-पर्व नीरस ही बीत गया। अब अगला वर्ष आये, फिर से उत्सव हो और तुम्हारे नृत्य का प्रदर्शन हो, तभी हम और सारा गाँव प्रसन्न होगा।"

मालविका अपने नृत्य-प्रदर्शन के महत्व से फूल उठी। उसका नृत्य न होने से मरकतपुर की प्रजा खिन्न है, इस ख़बर से उसका मन अभिमान से भर उठा। एक वर्ष बीत गया। उत्सव के प्रबन्धकों ने मालविका के नृत्य का आयोजन किया।

मालविका ने सब सुना। उसने प्रबन्धकों के पास इस आशय की एक सूचना भेजी कि उत्सव से पहले वे एक बार उससे मिल अवश्य लें। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। प्रबन्धकों को आश्चर्य तो हुआ, लेकिन वे उसी दिन मालविका के घर उससे मिलने गये।

मालविका ने आगन्तुकों के प्रति साधारण

दुर्गा राठौर

प्रबन्धकों का उत्तर सुनकर मालविका के चेहरे पर दर्प की हँसी छा गयी। विजय-पर्व में ये लोग चाहे जितने भी ठाठ कर लें, पर उसके नृत्य के बिना सब फीका रहेगा। जनता को सन्तुष्ट करने के लिए ये उसे दो सौ रुपये अवश्य देंगे, मालविका को विश्वास था।

मालविका के यहाँ से लौटकर प्रबन्धकों ने जमा-खर्च का हिसाब देखा। मालविका को दो सौ रुपये चुकाने के लिए जनता से नये रूप से चन्दा वसूल करना होगा, वरना वे दो सौ रुपये नहीं दे पायेंगे। प्रबन्धकों की वह समिति असमंजस में पड़ गयी, क्योंकि विशाला देश के नियम के अनुसार वे एक निश्चित सीमा से अधिक चन्दा वसूल नहीं कर सकते थे। इसके लिए राजा की अनुमति लेना आवश्यक था।

विशाला देश के राजा कृष्णदेवभूपति बड़े विद्वान और धार्मिक थे। प्रबन्धक-समिति के एक प्रतिनिधि ने मालविका के नृत्य-प्रदर्शन की माँग प्रसंग में उनके सम्मुख निवेदन किया।

प्रतिनिधि के मुख से सारा वृत्तान्त सुनकर राजा कृष्णदेवभूपति ने कहा, "दर्शनसिंह, प्रबन्धक समिति के अन्य सभी लोगों से कहना कि जनता से दोबारा चन्दा वसूल करने की कोई ज़रूरत नहीं है। बाकी चौरासी रुपये मैं दूँगा. हमारी राजसभा में चंद्रशेखर नाम के एक साधु आये हुए हैं। मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि मरकतपुर के विजय-पर्व के समय वे वहाँ उपस्थित रहें। मालविका के नृत्य-प्रदर्शन के एक दिन पूर्व उनका धार्मिक प्रवचन होगा।

शिष्टाचार भी नहीं दिखाया और बोली, "देखिये, हर साल आप लोग मेरे नृत्य-प्रदर्शन के लिए मुझे एक सौ सोलह रुपये की राशि भेंटस्वरूप दिया करते हैं, किंतु इस वर्ष उतनी राशि स्वीकार करने में मुझे कठिनाई होगी। आप लोग दो सौ रुपये की व्यवस्था कर सकें, तभी मैं नृत्य-प्रदर्शन कर सकती हूँ।"

मालविका की बात सुनकर प्रबन्धकों को घोर आश्चर्य हुआ। उसकी माँग के अलावा उन्हें उसके लापरवाह व्यवहार और बात करने के ढंग से बडा दुख और क्षोभ हुआ। कुछ क्षण मौन रहकर उन्होंने मालविका से कहा, "ठीक है, हम लोग आपस में चर्चा करके अपना निर्णय सूचित कर देंगे!"

जाकर इसकी समुचित व्यवस्था करो !"

राजा कृष्णदेव के आदेशानुसार मालविका की माँग स्वीकार कर ली गयी । उसके नृत्य-प्रदर्शन के एक दिन पूर्व चंद्रशेखर के प्रवचन के लिए शामियाना लगाया गया और मालविका को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया । श्रोताओं की पंक्ति में मालविका का आसन सबसे आगे था ।

निश्चित समय पर महात्मा चंद्रशेखर का भाषण आरंभ हुआ । उन्होंने कहा, "प्रेम का दूसरा रूप करुणा है । अपने शरीर से एक और प्राणी को जन्म देनेवाली स्त्री वास्तव में प्रेमस्वरूपिणी है । वह गृहिणी और माता के रूप में अपने करुणापूर्ण प्रेम को सबमें बाँट देती है । पर यहाँ हमें थोड़ा अन्तर दिखाई देता है—

"अगर बच्चे के मुख से ये शब्द निकल जायें, 'मां, कल तुम दिखाई नहीं दीं, इसलिए मैं बहुत डर गया'— तो मां का दिल दया से पिघल जाता है और वह मन ही मन ऐसा निर्णय करती है कि बच्चे को छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहिए । इसीतरह अगर पति प्रेमपूर्वक पत्नी से कहता है, 'कल तुम घर पर न थीं, इसलिए मुझे बड़ी मुसीबत उठानी पड़ी'—तो वह निश्चय कर लेती है कि पति को कष्ट पहुँचाकर कहीं नहीं जाना चाहिए । पर अगर यही बातें उस स्त्री से कही जायें, जिसके हृदय में दया, करुणा और प्रेम का अभाव है और जो केवल धन को ही महत्व देती है, तो वह विचलित न होगी, बल्कि सामनेवाले के विश्वास और उसकी निर्भरता को आधार बनाकर अपने स्वार्थ के लिए उसका

उपयोग करना चाहेगी । इसका एक ही कारण है— ऐसे लोग प्रेम-तत्व से अनजान होते हैं । जो हृदय से कोमल होते हैं, वे दूसरे के स्नेह और आदर को समझ लेते हैं, लेकिन जिनका हृदय कठिन होता है, वे प्रेम और आदर का भी मोल भाव कर ज़्यादा धन पाने के लालच में पड़ जाते हैं ।"...

ऐसी अनेक लौकिक और धार्मिक सूक्तियों के साथ महात्मा चंद्रशेखर का प्रवचन चल रहा था । आगे बैठी मालविका का हृदय यह सब सुनकर विकल होता जा रहा था ।

प्रवचन समाप्त होते ही मालविका महात्मा चंद्रशेखर के पास पहुँची और आँसूभरी आँखों से उनकी तरफ़ देखती हुई घुटने टेक कर बोली, "महात्मन्, आप इस अज्ञानिनी को क्षमा कर ज्ञान-भिक्षा दीजिये !"

महात्मा चंद्रशेखर और कोई नहीं, स्वयं राजा कृष्णदेवभूपति थे । उन्होंने अपना छद्मवेश हटा दिया और कहा, "मालविका, मैंने तुम्हारी नृत्यकला की प्रशंसा सुनी थी । मैं तुम्हें अपनी राजसभा में बुलाने की बात सोच रहा था कि इस बीच मंदिर एवं विजय-पर्व की प्रबन्धक समिति का एक कार्यकर्ता मेरे पास आया । जब मुझे मालूम हुआ कि कलाकारों के लिए अशोभनीय अहंकार तुम्हारे अन्दर भी आगया है तो मैं उसके निवारण के लिए स्वयं यहाँ आया ।"

राजा कृष्णदेवभूपति को प्रत्यक्ष अपने सामने देखकर मालविका को आनन्द, आश्चर्य और साथ ही अपने व्यवहार के प्रति लज्जा का अनुभव हुआ । उसने इस बार विजय-पर्व पर हर साल से श्रेष्ठ, मनमोहक नृत्य प्रस्तुत किया । राजा कृष्णदेव के आदेश से वह राजनर्तकी, फिर कुछ ही समय में प्रधान राजनर्तकी के पद पर आसीन हुई ।

अब मालविका के अन्दर कलाकार की विनम्रता थी । इतना बड़ा पद प्राप्त होने पर भी वह हर वर्ष विजय-पर्व पर मरकतपुर आती और मन्दाकिनी देवी के मन्दिर में अपना नृत्य प्रस्तुत करती ।

वैराग्य

(गतांक से आगे)

महाराजा महाजनक संन्यासी बनने का निश्चय करके राजभवन की दूसरी मंजिल पर चले गये और लोगों के साथ भेंट करना बंद कर दिया। वे कभी भी नीचे न उतरे। इस तरह चार माह बीत गये। राजभवन उन्हें बन्दीगृह की तरह लगता था, वे उससे मुक्त होना चाहते थे।

महाजनक ने अपने एक निजी सेवक को बुलाकर कहा, "हमारे लिए गेरुआ वस्त्र और मिट्टी का पात्र लाओ!" इसके बाद उन्होंने नाई को बुलवाकर अपना सिर मुँडवा लिया और गेरुए वस्त्र धारण कर, हाथ में मिट्टी का पात्र लेकर ऊपर से नीचे उतर आये। जब वे सीढ़ियों से नीचे आ रहे थे, उस समय रानी ने उन्हें देखा, लेकिन पहचाना नहीं। राजा उतर कर चले गये।

पर शीघ्र ही सच्चाई प्रकट हो गयी। रानी सीवली देवी ने दूसरी मंजिल पर जाकर देखा, महाराजा के केश नीचे गिरे हुए थे। उसने सारे राजभवन में राजा की खोज करवायी, पर उनका कहीं पता न लगा। अंत में सब परिजनों को पता लगा कि महाजनक ने संन्यास-दीक्षा ले ली है। सुनकर सब लोग रो पड़े और राजा महाजनक जिस दिशा में गये थे, उस दिशा में आगे बढ़े। सीवली देवी अन्य रानियों को साथ लेकर पति की खोज में निकल पड़ी। एक वृक्ष के नीचे पति को संन्यासी वेश में देखकर सब रानियों ने उन से वापस लौटने की विनती की, लेकिन महाजनक ने स्वीकार नहीं किया।

सीवली देवी ने राज्य के एक विश्वसनीय उच्च अधिकारी को बुलाकर कहा कि राजधानी में जगह-जगह गुप्त रूप से आग लगवा दी जाये। अधिकारी ने रानी के आदेश का पालन किया। रानी सीवली देवी ने पति के पास जाकर निवेदन किया, "महाराज, आपका मिथिला नगर जल रहा है। आपकी सारी संपत्ति अग्नि में

स्वाहा हो रही है । उसकी रक्षा कीजिये !"

"रानी, संपत्ति के नाम पर मेरे पास कुछ नहीं है, फिर उसके स्वाहा होने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ?" महाजनक ने उत्तर दिया ।

इसके बाद राजा नगर के परकोटे के उत्तरी द्वार से चल पड़े । रानी और प्रजा के प्रमुख जन भी राजा के पीछे-पीछे चले । राजा ने उन्हें रोकने के विचार से पीछे मुड़कर देखा और पूछा, "इस नगर का राजा कौन है ?"

सबने एक स्वर में उत्तर दिया, "महाराज, आप ही हमारे राजा हैं !"

"तब मैं आदेश देता हूँ, कोई भी इस लकीर को पार नहीं करेगा ।" कह कर राजा ने अपने दण्ड से मार्ग पर एक आड़ी रेखा खींच दी और आगे की तरफ़ चल दिये । कुछ देर सब ठहरे रहे किसी को भी उस रेखा को पार करने का साहस नहीं हुआ । पर रानी सीवली देवी उस रेखा को पार कर आगे दौड़ पड़ीं । रानी के पीछे प्रजाजनों ने भी उस रेखा को पार कर लिया ।

रानी शीघ्र ही पति के पास पहुँच गयी और उनके चरण पकड़कर बोली, "महाराज, आप मुझे, इन प्रजाजनों को देखिये ! सबके सब किस तरह आपकी वापसी के लिए व्याकुल हैं !"

"मैंने सबको त्याग दिया है । मैंने तुम्हें, राजभवन, नगर, देश सबको त्याग दिया है !" महाजनक ने उत्तर दिया ।

"महाराज, आपके संन्यासी होने पर मेरी क्या दशा होगी ?" सीवली देवी ने पूछा ।

"तुम इस बात का प्रयत्न करो कि तुम्हारा पुत्र दीर्घायु मन, वचन और कर्म से निष्पाप रहकर व्यवहार करता हुआ राज्य का भार संभाल ले !" राजा ने कहा ।

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए वे पैदल आगे बढ़ रहे थे । तभी सूर्यास्त हो गया । उस रात शिविर गाड़कर उन सबके विश्राम की व्यवस्था की गयी । दूसरे दिन प्रातःकाल महाजनक ने अपनी यात्रा आरंभ की । रानी सीवली देवी ने अन्य रानियों, परिजनों तथा प्रजा जनों से थोड़ा पीछे आने का आदेश दिया और वह राजा के साथ-साथ चलने लगी ।

काफ़ी दूर पैदल चलने के बाद वे लोग एक नगर में पहुँचे । नगर-द्वार पर कुछ कच्चे मकान थे और वहाँ कुछ बच्चे खेल रहे थे । एक लड़की छाज में लेकर धान फटक रही थी । उसके एक हाथ में एक चूड़ी और दूसरे हाथ में दो चूड़ियां थीं । जब भी वह लड़की धान फटकती, तब एक हाथ की चूड़ियां खन-खना उठतीं ।

इस दृश्य को देख कर महाजनक के मन में एक विचार आया । उन्होंने अपनी पत्नी को इसके द्वारा कुछ उपदेश देकर राजधानी वापस भेजने का निश्चय किया । उन्होंने उस लड़की से पूछा, "बेटी, तुम्हारा एक हाथ आवाज़ कर रहा है, दूसरा नहीं करता । क्या बात है ?"

उस लड़की ने उत्तर दिया, "महानुभाव, मेरे एक हाथ में दो दूड़ियां हैं, इसी से वह आवाज़ करता है । जहाँ तक आवाज़ का प्रश्न है, दूसरा तो निरर्थक है !"

राजा ने सीवली देवी की ओर मुड़कर कहा, "रानी, तुमने उस लड़की की बात सुनी ? वह कहती है, दूसरा निरर्थक है। यदि मैं तुम्हें अपने साथ चलने दूँगा, तो उस लड़की की नीतिपूर्ण बात का अतिक्रमण करनेवाला साबित होऊँगा ।"

रानी ने सिर झुकाकर अपने पति को आगे बढ़ने दिया। पर दूसरे ही क्षण वह व्याकुल हो उठी और तुरन्त दौड़कर अपने पति के पास जा पहुँची और उनके साथ-साथ चलने लगी।

कुछ देर बाद वे एक ऐसी जगह पहुँचे जहाँ एक लुहार कुछ हथियार बना रहा था। उसने एक बाण को हाथ में लिया और उसकी नुकीली धार की जाँच करने के लिए उसे एक आँख की सीध में रखकर दूसरी आँख बंद कर ली।

राजा ने लुहार से पूछा, "बेटा, जब तुम्हारे दो आँखें हैं, तब बाण की धार की जाँच करने के लिए तुमने एक आँख बन्द क्यों कर ली ?"

"महानुभाव, दोनों आँखों से देखने पर हथियार की सिधाई का पता नहीं चल सकता। बाण की धार की जाँच करने के लिए तो एक ही आँख से देखना पड़ेगा। इस काम में दूसरी आँख निरर्थक है।" लुहार ने जवाब दिया।

"रानी, तुमने इस लुहार का उत्तर सुना ?" राजा ने कहा। रानी सीवली देवी ने समझ लिया कि उसके पति महाजनक अब वापस न लौटेंगे। वह दुख और व्याकुलता के कारण अचेत होकर गिर पड़ी। महाजनक तेज़ क़दमों से एक विशेष दिशा में जाकर जंगल में ओझल होगये।

थोड़ी देर बाद सारा राज-परिवार और प्रजाजन वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने रानी के चेहरे पर पानी के छींटे दिये। रानी सीवली देवी होश में आयीं। रानी विषाद युक्त मन से सारे परिवार के साथ राजधानी मिथिला लौटीं और अपने पुत्र दीर्घायु का राज्याभिषेक संपन्न कराया। दीर्घायु के राजसिंहासन पर बैठने के बाद रानी सीवली देवी ने कभी राजभवन में प्रवेश न किया। राजोद्यान में एक कुटी बनवाकर वे वहीं रहने लगीं और अपना शेष जीवन संन्यासिनी की तरह बिताया।

महाजनक हिमालय में चले गये। उन्होंने घोर तपस्या कर सिद्ध-पद प्राप्त किया।

बदरीनाथ और केदारनाथ

अत्यन्त प्राचीनकाल से हिमालय की पर्वतमालाओं को पवित्रतम माना जाता है। महाकवि कालिदास ने हिमालय को 'देवतात्मा' कहकर वर्णन किया है। भारतवासियों का विश्वास है कि हिमालय पर देवता तथा यक्ष-गन्धर्वों का वास है। हिमालय की पर्वत-श्रेणियों में ही अनेक नदियों का उद्गम-स्थान है।

अनेक साधु, संत, महात्मा ध्यान एवं तपस्या करने के लिए शांत वातावरण की खोज में हिमालय के भीतरी भागों में चले जाते हैं। युग-युगान्तरों से हिमालय ऐसे अनेक साधु-महात्माओं का आवास रहा है। हिमालय की पर्वत-श्रेणियों में अनेक पवित्र स्थल हैं।

हिमालय के पवित्र स्थलों में बदरीनाथ का अत्यन्त प्रमुख स्थान है। विष्णु क्षेत्र कहलाने वाले इस पवित्र स्थान पर ही व्यास ऋषि के मुख से 'महाभारत' की वाणी निःसृत हुई थी, जिसे विघ्नेश्वर गणेश ने सुनकर लिपिबद्ध किया था।

बहुत काल बीता, तब बदरीनाथ में विष्णु का मन्दिर बनाया गया था। पर ऐसा माना जाता है कि पहाड़ी घाटी के टूट जाने के कारण वह ध्वस्त होगया और मन्दिर में प्रतिष्ठित भगवान विष्णु की प्रतिमा अलकनन्दा में डूब गयी।

भारत-भ्रमण करते हुए आदि शंकराचार्य का पदार्पण जब बदरीनाथ में हुआ तो उन्होंने अपने ध्यानयोग से भगवान विष्णु की प्रतिमा का पता लगाया और नये मंदिर का निर्माण कर उसमें भगवान विष्णु की उस प्रतिमा को पुनः स्थापित किया तथा उनकी पूजा-आराधना का समुचित प्रबंध किया।

आदि शंकराचार्य द्वारा की गयी व्यवस्था का निर्वाह आज भी उसी प्रकार होता है। जब यातायात की सुविधाएं नहीं थीं, तब इस मन्दिर के दर्शनार्थियों को मार्ग में अनेक यातनाएं झेलकर इस स्थान तक पहुँचना पड़ता था। अब यात्री बहुत कम श्रम उठाकर बदरीनाथ की यात्रा कर लेते हैं।

हिमालय के इस प्रदेश में भयानक हिमपात होने के कारण वर्ष में छह माह के लिए यह मन्दिर बन्द रहता है। उस काल में पुजारियों, वहां के निवासियों तथा यात्रियों के लिए बर्फ़ से ढंके इस मन्दिर में प्रवेश करना संभव नहीं होता। फिर भी भगवान की पूजा बंद नहीं होती। उस मूर्ति की एक प्रतिरूप मूर्ति की पूजा जोशीमठ में संपन्न की जाती है।

मन्दिर का द्वार बन्द करने के पूर्व भगवान विष्णु की प्रतिमा के सामने दीप जलाया जाता है। छह माह के बाद ग्रीष्मकाल के आरंभ में जब मंदिर का द्वार खोला जाता है, तब तक वह दीप प्रज्वलित रहता है। बहुत समय से यह क्रम चला आ रहा है। यह इस मन्दिर की एक आश्चर्यजनक विशेषता है।

समुद्र की सतह से ११,७३५ फुट की ऊँचाई पर केदार नाथ का मंदिर है। यह सुप्रसिद्ध शिवतीर्थ है। यहाँ तक पहुंचना कष्ट साध्य अवश्य है, पर फिर भी असंख्य भक्त यहाँ तक आकर मंदिर में दर्शन करते हैं। यह क्रम शताब्दियों से चला आ रहा है।
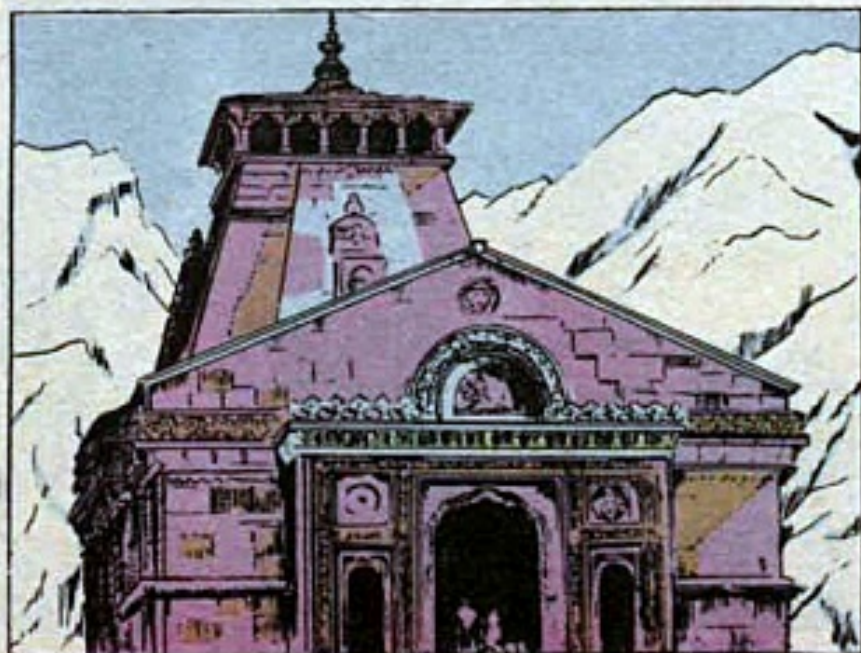
कहा जाता है कि द्रौपदी सहित पाँचों पांडवों ने इसी मार्ग से होकर महाप्रस्थान किया था। इस मार्ग में सबसे पहले द्रौपदी ने प्राण त्यागे थे, फिर मार्ग का श्रम न उठा सकने के कारण सहदेव ने देहत्याग किया था।

यह भी कहा जाता है कि रुद्र हिमालय नाम से विख्यात इस प्रदेश में शिवस्वरूप का दर्शन कर युधिष्ठिर ने उसकी पूजा की थी। तब से जो शिव की आराधना आरंभ हुई, वह आज तक चली आ रही है।

श्रद्धा और भक्ति से प्रेरित तीर्थयात्री मार्ग की सभी कठिनाइयों को खुशी से सहन कर केदारनाथ के मंदिर में दर्शनों के लिए आते हैं। बदरीनाथ के मन्दिर की भाँति ही केदारनाथ भी वर्ष में छह महीने बंद रहता है। इस काल में भगवान की प्रतिरूप मूर्ति की पूजा उखीमठ में की जाती है।

विजय का राज़

उजबेकिस्तान के एक राज्य के सुलतान का नाम कमलुद्दीन था। वह अभी युवक ही था और स्वभाव से विलासी था। उसका ज़्यादातर समय दावतों और मनोरंजन के कार्यक्रमों में बीतता था। शासन-सम्बन्धी कार्यों तथा जनता की समस्याओं को सुलझाने में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी।

एक दिन सुलतान एकान्त में बैठा हुआ था तब उसके ख़ास वज़ीर ने उससे कहा, "हुज़ूर, हमारे भेदियों ने हमें ख़बर दी है कि पड़ोसी देश का सुलतान हमारे मुल्क पर हमला करने जा रहा है। उसका सामना करने के लिए हमें बड़े पैमाने पर फ़ौजी तैयारी करनी चाहिए!"

सुलतान ने वज़ीर की तरफ़ अवहेलना से देखकर कहा, "हमारे पास पहले ही इतनी भारी फ़ौज़ है; हिम्मतवर सेनापति हैं। ऐसी हालत में हमें किसी के हमले से डरने की कोई ज़रूरत नहीं है!"

वज़ीर सिर झुकाकर वहाँ से चला गया।

वज़ीर की सूचना सच निकली। एक हफ़्ता भी न गुज़रा था कि एक रात दुश्मन की फौज़ ने क़िले को घेर लिया। सेनापति के नेतृत्व में सभी दलनायकों ने अपनी-अपनी टुकड़ियों के साथ दुश्मन का सामना किया, लेकिन जीत न सके। बहुत लोग मारे गये, कुछ भाग निकले और क़िले पर दुश्मन का क़ब्ज़ा हो गया।

सुलतान कमलुद्दीन लाचार होकर वहाँ से गुप्त रूप से भाग निकला और उसने अपने एक निकट के रिश्तेदार सुलतान के यहाँ आश्रय लिया। उस सुलतान का क़िला बहुत मज़बूत था और चारों तरफ़ खाई से घिरा हुआ था।

कुछ दिन बीते। एक रोज़ कमलुद्दीन ने अपने रिश्तेदार सुलतान से कहा, "मैं अपने खोये हुए राज्य को फिर से पाना चाहता हूँ। क्या आप मेरी मदद करेंगे?"

उस राज्य का सुलतान कमलुद्दीन को बेटे

'अरब की रातों' से एक कहानी

की तरह चाहता था। वह बहुत खुश हुआ और बोला, "इससे बढ़कर मेरे लिए खुशी की बात क्या हो सकती है कि तुम अपने राज्य को फिर से प्राप्त कर लो !"

उसने अपनी आधी फौज़ कमलुद्दीन के साथ भेज दी। कमलुद्दीन फौज़ लेकर चल पड़ा। अभी वह मार्ग में ही था कि उसने ठंडी छायावाला एक घना वृक्ष देखा। उसे देखते ही कमलुद्दीन के मन में यह विचार आया कि दुश्मन को हराने के लिए जब इतनी बड़ी फौज़ है, तो मेरे जाने की क्या ज़रूरत है ? क्या ये सारे सिपाही दुश्मन को आसानी से हराकर मेरा क़िला मुझे नहीं सौंप सकते ?

कमलुद्दीन ने सेनापति को बुलाकर कहा, "मैंने तुम्हारी बहादुरी के बारे में सुना है। तुम जाओ और दुश्मन पर हमला कर क़िले पर कब्ज़ा कर लो ! फिर इसकी ख़बर मुझे दो ! मैं यहाँ इस पेड़ की छाया में आराम कर रहा हूँ।"

फौज़ आगे बढ़ी। कमलुद्दीन ने अपने घोड़े को पेड़ के तने से बाँध दिया और खुद उस पेड़ की छाया में बैठकर अंगूर की शराब पीते हुए क़िले की फतह की ख़बर सुनने का सपना देखने लगा। अभी शाम पूरी तरह हुई भी नहीं थी कि उसे ख़बर मिली कि उस लड़ाई में उसके तमाम सिपाही मर गये हैं और कुछ बन्दी बना लिये गये हैं।

ख़बर सुनकर कमलुद्दीन के हाथों से शराब का प्याला छूट पड़ा। उसका दिमाग़ चकरा गया। अब वह अपने इतने खैरख्वाह रिश्तेदार के पास कैसे लौटे, कैसे अपना चेहरा दिखाये ?

वह वहाँ से चल पड़ा। पागल की तरह इधर-उधर भटकता रहा। तमाम तकलीफ़ें उठाकर आखिर वह एक रोज़ ख़दीदान नाम के एक सुलतान के दरबार में पहुँच गया।

खदीदान के पास बड़ी भारी फौज़ देखकर कमलुद्दीन ने अपने मन में सोचा कि अगर मेरे पास इतनी बड़ी फौज़ होती हो मैं अपने खोये हुए राज्य को मिनटों में जीत सकता था। पर सोचने से क्या होता है ? कमलुद्दीन ने अपना परिचय किसी को नहीं दिया। वह अपनी हालत पर मन मसोस कर रह गया और सुलतान खदीदान का अंगरक्षक बनकर अपना समय बिताने लगा।

एक बार पड़ोसी राज्य की फौज़ ने अचानक खदीदान के राज्य पर हमला बोल दिया। सुलतान खदीदान ने बड़ी तत्परता से अपनी फौज़ को हिदायतें दीं और स्वयं सेना का नेतृत्व करके दुश्मन की फौज़ का सामना किया। खदीदान की फौज़ में पराक्रमी योद्धाओं तथा साहसी दलनायकों की कमी न थी, फिर भी उसने स्वयं सेना का संचालन किया, यह कमलुद्दीन के लिए बड़े आश्चर्य की बात थी।

युद्ध में खदीदान की फौज़ ने दुश्मन के छक्के छुड़ा दिये और विजय की पताका फहराते हुए लौटे। दूसरे दिन कमलुद्दीन ने खदीदान से पूछा, "जहाँपनाह, मेरी समझ में नहीं आता कि जब आपकी फौज़ में इतने बहादुर और कुशल योद्धा और सेनानायक हैं, तब आपने अपनी जान की ज़रा भी परवाह न कर सेना का नेतृत्व क्यों किया ?"
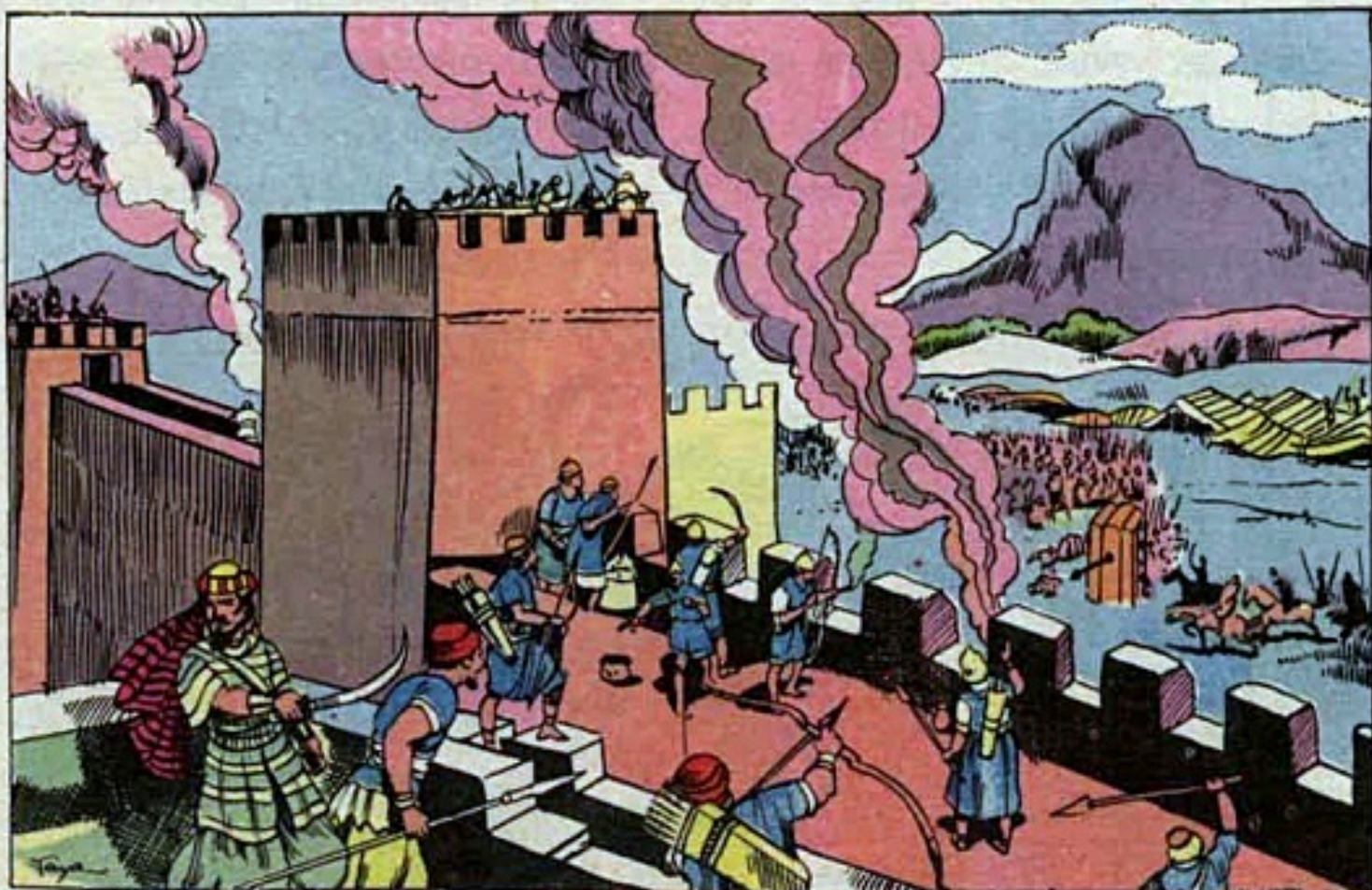
"सुनो कमलुद्दीन, सिर्फ़ भारी फौज, बहादुर सिपाही और कुशल सेनापतियों के होने से ही सब कुछ नहीं होता। ये फतह हासिल कर ही लेंगे, यह सोचना ग़लत है। जब सुलतान फौज़ का संचालन कर सबसे आगे चलता है, तभी फौज़ में हौसला पैदा होता है और तभी सेना और सेनानायक जान की बाज़ी लगाकर लड़ाई करते हैं। तभी फतह हासिल होती है। विजय का राज़ इसी बात में है।" खरीदान ने मुस्कराकर जवाब दिया।

कमलुद्दीन ने खदीदान की बातों की सच्चाई को समझा और वह उसी रात घोड़े पर अपने राज्य की तरफ चल पड़ा। अगले दिन वह अपने क़िले के द्वार पर पहुँचा।

क़िले के द्वार पर पहरा दे रहे सिपाहियों ने कमलुद्दीन को अन्दर जाने से रोक दिया।

"यह क्या ? तुम तो मेरे ही सिपाही हो ! क्या तुम मुझे नहीं पहचानते ? मैं तुम लोगों का सुलतान कमलुद्दीन हूँ।" कमलुद्दीन ने तेज़ आवाज़ में कहा।

क़िले के मुखद्वार के पास वाली एक इमारत में कुछ ख़ास लोग गुप्त रूप से इकट्ठा होकर यह विचार कर रहे थे कि इस नये सुलतान के अत्याचारों से राज्य को कैसे बचाया जाये ? वे कमलुद्दीन के निजी सिपहसालार थे। कमलुद्दीन की आवाज़ को पहचानकर वे वहाँ पर आये। सबने बैठकर गुप्त चर्चा की।

कमलुद्दीन ने रात के साये में नये सुलतान के साथ द्वेष रखनेवाले सिपाहियों और सिपहसालारों का संगठन किया। योजना के अनुसार दो सप्ताह बाद कमलुद्दीन के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। कमलुद्दीन ने दुश्मन सुलतान का वध करके विजय हासिल की और फिर से राजगद्दी पर आसीन हुआ।

सुलतान कमलुद्दीन का जीवन अब बिलकुल बदल चुका था। भोग-विलास से कोसों दूर रहकर वह प्रजा के सुख-दुख को ही अपना कर्त्तव्य मानता था। शीघ्र ही वह अपनी प्रजा में अत्यन्त लोकप्रिय हो गया।

सलाहकार

श्यामपुर में वल्लभराम की अच्छी खेती बाड़ी थी। वल्लभराम का एक ही पुत्र था शिवराम। बचपन से ही वह बड़ा आलसी था। न तो पढ़ाई में उसकी रुचि थी, न खेती बाड़ी में। भरपेट भोजन करके मिट्टी खाये साँप की तरह हमेशा लेटा रहता था। अब वह जवान हो गया था, फिर भी उसके आलसीपन में कोई परिवर्तन नहीं आया था। पुत्र की यह दशा देख वल्लभराम मन ही मन दुखी हो जाता था।

श्यामपुर में ही वल्लभराम का देवनाथ नाम का एक बाल मित्र था। एक बार उसके सामने एक जटिल समस्या आ गयी। उसकी बेटी सरला का रिश्ता हो चुका था। देवनाथ का दामाद शहर में एक अच्छी नौकरी पर था। उसने दहेज़ ज़मीन के रूप में नहीं, नक़दी के रूप में मांगा था। देवनाथ ने उसकी शर्त मान ली थी। मुहूर्त का दिन भी निश्चित हो चुका था।

देवनाथ की ज़मीन बड़ी उपजाऊ थी। उसे पूरा विश्वास था कि जब भी वह उसे बेचना चाहेगा, वह मिनटों में बिक जायेगी। उसकी फसल अभी कटनी बाकी थी, इसलिए वह मुहूर्त के आने तक चुप बैठा रहा। जब विवाह का दिन बिलकुल नज़दीक आगया तो उसने अपनी ज़मीन का मोलभाव तय किया। पर क्योंकि श्यामपुर के सभी लोग देवनाथ की ज़रूरत से परिचित थे, इसलिए सब उसका बहुत कम दाम देने के लिए तैयार थे।

देवनाथ वल्लभराम के घर पहुँचा, उसे सारा किस्सा सुनाकर बोला, "दोस्त, शादी के चार दिन रह गये हैं। मुझे कुछ नहीं सूझता कि मैं क्या करूँ ?"

वल्लभराम को भी कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। इसलिए वह कोई भी सलाह दिये बिना मौन बैठा रहा। पास ही चारपाई पर शिवराम आलस्य की मूर्ति बन पड़ा हुआ था। उसने जम्हाई लेकर कहा, "इसमें कौन सी बड़ी सूझ

रेणुका प्रसाद

की ज़रूरत है ? आपका खेत जमींदार के खेत से लगा हुआ है। उनसे बेचने की बात कीजिए, वे अच्छे मूल्य पर ख़रीद लेंगे ।"

"अरे वाह, तुमने तो बड़े पते की बात कही ! यह पहले मेरे दिमाग़ में क्यों नहीं आया ?" देवनाथ फौरन ज़मींदार के घर की तरफ चल दिया। जमींदार ने देवनाथ की ज़मीन मुँह-माँगे दामों पर हाथों हाथ ख़रीद ली । देवनाथ ने अपनी बेटी सरला का विवाह खूब धूमधाम से कर दिया। विवाह में उसने शिवराम को विशेष रूप से आमंत्रित किया ।

कुछ दिन निकल गये। एक दिन वल्लभराम ने अपने मन की व्यथा देवनाथ के सामने प्रकट कर ही दी। वह खिन्न स्वर में बोला, "भाई देवू, मेरा पुत्र शिवराम किसी काम का नहीं है। सारे दिन घर में निकम्मा पड़ा रहता है । क्या करूँ !"

देवनाथ थोड़ी देर सोचता रहा, फिर बोला, "मैं उसे विवेकशील बना दूंगा। एक दिन वह खूब कमायेगा, इसकी जिम्मेदारी मेरी है ।"

देवनाथ ने शिवराम को हिलाया और नींद से जगाकर कहा, "बेटा शिवराम, सब तुम्हें आलसी और नालायक़ बताते हैं। तुम्हें क्या इस बात से ज़रा भी बुरा नहीं लगता ?"

शिवराम ने बड़ी मुश्किल से अपनी आँखें खोलीं और बोला, "चाचा, लोगों का सोचना गलत नहीं है । ऐसी हालत में मैं दुखी क्यों होऊँ ।"

"लेकिन मेरी दृष्टि में तुम एक मेधावी युवक हो। तुमने मुझे खेत की बिक्री के समय जमींदार से मिलने की जो सलाह दी, वह बड़ी कामग़र सिद्ध हुई। इसलिए तुम आज से सलाह देने का धंधा शुरू कर दो। तुम्हारी सलाह से लोगों को फ़ायदा होगा और तुम्हें भी थोड़ा-बहुत धन मिल जाया करेगा ।" देवनाथ ने समझाया ।

शिवराम ने चारपाई पर पड़े-पड़े ही करवट बदल कर कहा, "आप बेकार मेरे लिए परेशान हो रहे हैं । मैं कोई मेधावी नहीं हूँ ।"

"इस बात का फ़ैसला हमें करना है, तुम्हें नहीं ! बस तुम कुछ दिन तक जैसा मैं कहूँ, करते जाओ, फिर तुम देखना !" देवनाथ ने वल्लभराम के बाहर के दालान में एक चटाई बिछवायी और उस पर शिवराम के बैठने का

इन्तज़ाम कर दिया । देवनाथ ने एक तख्ती पर सुंदर अक्षरों में लिखा— "सलाह के लिए मिलिये !" और उसे शिवराम के निकट की दीवार पर लटका दिया । रास्ता चलनेवाले लोग उसे पढ़कर हँसते । एक सप्ताह बीत गया, कोई शिवराम की सहायता लेने नहीं आया ।

"यह सब झंझट क्यों ? मुझे आराम से सोने दीजिए !" शिवराम ने देवनाथ से शिकायत की ।

देवनाथ ने समझाया, "थोड़ा सब्र से काम लो ! मैं भी तो तुम्हारे साथ यहां बैठता हूं न !"

आठवें दिन एक गड़रिया उस रास्ते से गुज़रा । उसने वह तख्ती और दो आदमियों को इस तरह चटाई पर बैठे देखा तो पूछा, "आजी, यह सब क्या है ? आप क्या करते हैं ?"

देवनाथ ने जवाब दिया, "जो लोग किसी उलझन या संकट में फँस जाते हैं तो उन्हें हम सलाह देकर उनकी समस्या को दूर करते हैं । बदले में अगर कोई कुछ देना चाहता है तो भले ही दे दे, हमारी तरफ़ से कोई मजबूरी नहीं है ।" देवनाथ ने जवाब दिया ।

"अच्छा, ऐसी बात है !" गड़रिया मुस्कराने लगा । फिर शिवराम की तरफ़ मुख करके बोला, "शिवराम, तुम जानते ही हो, गाँव के बाहर दूर तक बंजर इलाका है । भेड़ बकरियों को चारा न मिलने की वजह से मुझे उन्हें पास की पहाड़ी तक हाँकना पड़ता है । हम बहुत से गड़रियों ने तो अब वहीं डेरा डाल लिया है । पर वहाँ भेड़िये का ख़तरा हमेशा बना रहता है । रातों में हम सब सोये बिना पहरा देते हैं । फिर भी भेड़िया एकाध भेड़-बकरी उठा ले ही जाता है । तुम हमें इससे बचने का कोई उपाय बता सकते हो ?"

शिवराम ऊँघता हुआ बोला, "देखो भाई, सबके जागने की तो कोई ज़रूरत नहीं है । तुममें से कोई एक हर रात जागने का नियम बना लो । जिसकी बारी हो, वह पेड़ पर बैठकर ढपली बजाता रहे । ढपली की आवाज़ सुनकर भेड़िया उस इलाके में आने की हिम्मत नहीं करेगा ! इस तरह बाकी लोगों को नींद भी मिल जायेगी और भेड़-बकरियां भी सुरक्षित रहेंगी ।"

"वाह, क्या सलाह दी है ? हमारे दिमागों में तो गोबर भरा हुआ है जो आज तक सब के सब जागते रहे और यह साधारण-सी बात नहीं

सूझी ।" गड़रिये ने खुशी-खुशी शिवराम के हाथ में एक सिक्का रखा और चला गया ।

श्यामपुर के लोगों को जब पता लगा कि शिवराम की सलाह मानकर गड़रिये भेड़ियों के हमलों से छुटकारा पा गये हैं, तो वे भी शिवराम से सलाह लेने के लिए आने लगे ।

धीरे-धीरे शिवराम की कमाई और प्रसिद्धि दोनों बढ़ती गयी । पड़ोस में ही भरतपुर ग्राम था । वहां के जमींदार ने जब शिवराम के बारे में सुना तो उसे बुलवा भेजा और आने पर कहा, "मैंने सुना है तुम सलाह देने में सिद्ध हस्त हो ! मेरे दामाद को शराब की बुरी लत लग गयी है । उसकी यह आदत हम छुड़ा नहीं पा रहे हैं । छुड़ाने का कोई उपाय हो तो बताओ !"

"महानुभाव, आप किसी अच्छे वैद्य के यहां से वमन करने की दवा मँगवा कर गुप्त रूप से शराब के गिलास में मिलवा दीजिये । शराब पीने के बाद आपके दामाद वमन करके बेहोश हो जायेंगे । आप लोग थोड़ा हो-हल्ला मचाकर वैद्य को बुलवा लेना और फिर उनके हाथों से वमन बन्द की दवा दिलवा देना । इसके बाद आप वैद्य के मुख से ही अपने दामाद को यह सलाह देने की व्यवस्था करें कि शराब के कारण ही उनकी ऐसी हालत हुई है और अगर थोड़ी सी भी देर हो जाती तो प्राण ख़तरे में पड़ जाते । जहाँ तक मुझे उम्मीद है, इसके बाद आपके दामाद शराब का कभी नाम तक न लेंगे ।" शिवराम ने जमींदार को पूरी योजना समझा दी ।

उसी रात जमींदार ने शिवराम की सलाह पर अमल किया । परिणाम शुभ ही निकला और जमींदार का दामाद शराब से इतना डर गया कि उसे ज़हर समझने लगा । जमींदार ने प्रसन्न होकर शिवराम को सौ सिक्के भेंट किये ।

इस घटना को भी एक महीना बीत गया । उन्हीं दिनों इस पूरे प्रदेश के राजा महेंद्रपाल पर एक संकट आ पड़ा । उनकी राजधानी नन्दनगरी को पड़ोसी देश के राजा विक्रमवर्मा ने घेर लिया । उन दिनों राजा महेंद्रपाल रोगापीड़ित थे । उन्हें बीमार जानकर ही विक्रमवर्मा को लड़ाई छेड़ने का हौसला हुआ था ।

राजा महेंद्रपाल के दरबार में भरतपुर ग्राम का जमींदार अक्सर आया-जाया करता था ।

उसने राजा के दर्शन किये और कहा, "श्यामपुर में शिवराम नाम का एक सलाहकार है। उसकी बुद्धिमत्ता से अनेकों के बिगड़े काम बने हैं। क्यों न महाराज, आप उससे परामर्श करें !" यह कह कर जमींदार ने अपना अनुभव भी सुना दिया। राजा महेंद्रपाल ने जमींदार के कहे अनुसार शिवराम को बुलवा भेजा। शिवराम के आने पर राजा ने सारी समस्या का विवरण दिया और उससे सलाह माँगी।

शिवराम ने तुरन्त कहा, "महाराज, आप पूरे नगर और देश में यह अफ़वाह फैला दीजिए कि आपकी बीमारी एक कपट-नाटक है, स्वांग है। इसके बाद किसी तरह राजा विक्रमवर्मा के कानों तक यह बात पहुँचा दीजिए कि आप उस पर स्वयं हमला न करके उसके द्वारा हमला होने का व्यूह रच रहे थे, ताकि उसे उसके नगर से उखाड़कर अपने इलाके में ले आयें और ज़्यादा आसानी से पराजित कर सकें। इसीलिए आपने अस्वस्थ हो जाने का यह नाटक रचा है। उसे यह भी मालूम हो जाना चाहिए कि आप सारा दिन अन्तःपुर में नाच-गाने में व्यतीत करते हैं, लेकिन, दर असल, वह एक बहाना है और आप छिपे तौर पर युद्ध की सारी तैयारियां करवा रहे हैं। जब विक्रमवर्मा के कानों तक ये सारी ख़बरें पहुँचेंगी तो वह आपकी सीमा का अतिक्रमण नहीं करेगा और वापस लौट जायेगा।"

राजा महेंद्रपाल ने शिवराम की सलाह पर अमल किया। जब विक्रमवर्मा को उसके गुप्तचरों ने देश में फैली हुई इन सारी बातों के समाचार दिये तो उसने महेंद्रपाल पर हमला करने का विचार त्याग दिया और सीमा पर जो युद्ध-शिविर लगा रखे थे, उन्हें उखड़वाकर अपनी राजधानी लौट गया।

राजा महेंद्रपाल ने जब यह समाचार सुना तो वे बहुत खुश हुए। उन्होंने शिवराम को अपने अन्तरंग सलाहकार के पद नियुक्त किया।

शिवराम का आलस्य भी अब तक दूर हो चुका था। वह देश में लोकप्रिय सलाहकार के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

बन्धन-मुक्ति

एक समय की बात है, शंकर नाम का एक मांत्रिक था। अब वह बूढ़ा हो चला था और अपने गाँव की गली में एक छोटी-सी दूकान चलाता था। वह मांत्रिक है, यह बात भी अब किसी के ध्यान में नहीं थी। सिर्फ़ किशोर नाम का एक लड़का इस बात को जानता था।

किशोर की मां का देहान्त हो चुका था और उसका पिता मेहनत-मज़दूरी के लिए आसपास के गाँवों में जाया करता था। किशोर मांत्रिक शंकर के पास ही रहता और उसकी दूकान पर ग्राहकों को चीज़ें दिखलाने का काम करता है।

शंकर ने किशोर को एक चीज़ छूने से मना कर दिया था। वह एक अनोखा तानपूरा था। दूकान पर ऐसे अनेक ग्राहक आते जो बड़ी उत्सुकता से पूछते, "इस तानपूरे का क्या दाम है ?" पर मांत्रिक शंकर फटाक से कह देता, "यह तानपूरा बिक्री के लिए नहीं है ।"

कुछ अमीर ग्राहक भी उधर से गुज़रते। पास के एक उमराव ने तो उस तानपूरे के एक लाख रुपये तक देने को कहा, पर बूढ़ा मांत्रिक उस तानपूरे को देना तो दूर, छूने भी नहीं देता था। एक दिन किशोर ने बूढ़े मांत्रिक से कहा, "दादाजी, तुम्हें इतना धन मिल रहा है। क्यों नहीं इस तानपूरे को बेच देते ?"

"जब तुम बड़े हो जाओगे, तब मैं इसे तुम्हें दे दूँगा। इससे अद्भुत संगीत निकलता है। इस संगीत को सुनकर सब लोग मंत्रमुग्ध होकर तुम्हारा मुँह देखते रह जायेंगे।" यह कहकर शंकर ने तानपूरे को झंकृत किया। उसके अन्दर से मधुर संगीत के अद्भुत निर्झर फूट पड़े।

रहस्य यह था कि मांत्रिक शंकर ने उसके भीतर एक देवकन्या को अनेक वर्ष पहले अपने मंत्रबल से बंदी बनाया था। देवकन्या मांत्रिक शंकर के अधीन थी। वह जब भी आदेश देता तो वही यह दिव्य संगीत सुनाया

२५ वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित कहानी

करती थी। देवकन्या मांत्रिक शंकर से तो बहुत डरती थी, लेकिन किशोर को बहुत चाहती थी। किशोर जब भी तानपूरा हाथ में लेता, वह धीमे स्वर में उसे सुंदर लेकिन दर्दभरा संगीत सुनाया करती थी। देवकन्या का संगीत सुनकर बालक किशोर की आँखों से आनन्द के अश्रु गिरते थे।

इसी बीच उस ग़रीब बालक किशोर का जन्मदिन आया। उस दिन बालक ने मांत्रिक शंकर को प्रणाम किया। मांत्रिक ने उसे आशीर्वाद देकर कहा, "बेटा किशोर, मैंने तुमसे कहा था कि मैं तुम्हें यह तानपूरा दूँगा। लो, आज मैं तुम्हें इसे देता हूँ। तुम जैसा चाहो, इसका उपयोग कर सकते हो!" मांत्रिक ने वह तानपूरा बालक किशोर के हाथों में रख दिया।

किशोर ने पूछा, "दादाजी, क्या यह आपने हमेशा के लिए मुझे दे दिया है? क्या मैं अपनी इच्छानुसार इसका उपयोग कर सकता हूँ?"

"अवश्य ही अब यह तुम्हारा है। तुम जैसा चाहो, इसका उपयोग कर सकते हो!" शंकर ने जवाब दिया।

किशोर ने उस तानपूरे को कंधे से सटाया और तारों को झंकृत कर दिया। दूसरे ही क्षण तानपूरे के भीतर से देवकन्या का दैन्यभरा करुण संगीत फूट पड़ा। वह गारही थी, "हे प्रिय बालक, तुम मुझे इस बंधन से मुक्त करो। मुझे वन-उपवन अत्यन्त प्रिय हैं। मुझे अपने हरियाले दिव्य प्रदेशों में जाने दो!"

किशोर ने उस करुण संगीत को बीच में ही बंद कर दिया और मांत्रिक शंकर की तरफ गरदन घुमाकर विनतीभरे स्वर में पूछा, "दादा जी, क्या मैं इस देवकन्या को बंधन-मुक्त कर सकता हूँ?"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि इस तानपूरे के अंदर देवकन्या बन्दी है?" मांत्रिक ने पूछा।

"दादाजी, मैंने अनेक बार देव कन्या की वाणी सुनी है। उसने मुझसे कई बार पूछा है कि क्या मैं उसे कभी बंधन-मुक्त कर सकता हूं? मैं उसकी व्याकुलता को अधिक सहन नहीं कर पाऊँगा। अगर आप सचमुच ही इस तानपूरे पर मेरा अधिकार मानते हैं तो मैं इसी क्षण देवकन्या को मुक्त करता हूँ।" किशोर के शब्दों में विनती भी थी और वेदना भी थी।

"किशोर, बेटे, अगर तुमने देवकन्या को इस तानपूरे से मुक्त कर दिया तो फिर ऐसा दिव्य संगीत नहीं सुना सकोगे। जब तक वह इस तानपूरे के अंदर है, तभी तक तुम्हारा संगीत अद्भुत और अपूर्व होगा। इस संगीत को सुनकर सारा संसार तन्मय होकर तुम्हारे चरणों में पड़ा रहेगा। दिव्य गान के द्वारा तुम्हें यश, वैभव, अधिकार सब कुछ प्राप्त होगा। वरना तुम दरिद्रता का जीवन बिताओगे। अब बेटा, तुम्हीं निर्णय करो, तुम्हें इन दोनों में से कौन सा जीवन प्रिय है?" मांत्रिक शंकर ने पूरा नक़्शा रख दिया।

किशोर ने कहा, "दादाजी, मेरे जीवन का चाहे जो भी हो, मैं देवकन्या को और अधिक बन्दी बनाकर नहीं रख सकता।" यह कहकर उसने तानपूरा ज़मीन पर दे मारा।

तानपूरा टुकड़े-टुकड़े हो गया। दूसरे ही क्षण किशोर ने देखा एक अपूर्व सुन्दर देवकन्या उसके सामने खडी मुस्करा रही है।

देवकन्या ने मधुर आवाज़ में कहा, "किशोर, तुम सचमुच ही दिव्य बालक हो! तुमने मुझे बंधन-मुक्त किया है। मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैं अब इस तानपूरे में तो अवश्य ही न रहूँगी और तुम मेरी महिमा के कारण जो दिव्य संगीत सुना सकते थे, न सुना पाओगे। लेकिन मैं स्वयं तुम्हारे पास आया करूँगी और तुम्हें दिव्य गीत और संगीत सुनाया करूँगी। तुम उन दिव्य गीतों को लिख लेना और उन्हें एक महान ग्रंथ का रूप देना। जब संसार के सामने वह ग्रंथ प्रकट होगा, तो तुम्हें महान यश प्राप्त होगा!" इतना कहकर देवकन्या अदृश्य हो गयी।

मांत्रिक शंकर ने मुस्करा कर वात्सल्यभरी दृष्टि से किशोर को देखा और तानपूरे के टुकड़ों को जोड़कर उसे पहले जैसा बना दिया। किशोर के हाथ में सौंपते हुए कहा, "बेटे, मैं तुम्हारे त्याग की सराहना करता हूँ। यह तानपूरा लो और सुखपूर्वक अपना जीवन बिताओ! सचमुच ही तुम यश के पात्र हो!" कहते-कहते मांत्रिक शंकर अदृश्य होगया।

शिव पुराण

पार्वती ने विष्णु के पास जाकर निवेदन किया, "भैया, मेरे पतिदेव को गजासुर ने लिंग रूप में अपने हृदय के भीतर छिपा रखा है। आप कुछ ऐसा कीजिये कि वे फिर से कैलास में आजायें!"

विष्णु ने पार्वती को वचन दिया कि वे अवश्य ही उनकी इच्छा पूरी करेंगे। उन्होंने कैलास और पार्वती की रक्षा के लिए गणपतियों में से सबसे बड़े को अधिपति नियुक्त किया और रुद्रगणों तथा वीरभद्र गणों के साथ ब्रह्मा के पास पहुँचे। इंद्र आदि देवता भी वहाँ आ पहुँचे। विष्णु ने अपने संकल्प के बारे में कहा।

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों तथा गणों ने छद्मवेश धारण किया और सबके सब शोणितपुर पहुँचे। नन्दी ने नादिया का रूप बना लिया और शेष जनों ने विविध वाद्यवृंद हाथ में लेकर वादकों का वेश बदल लिया। विष्णु ने नादिया को खिलानेवाले का रूप धारण किया। इस तरह वे शोणितपुर की गलियों में घूमने लगे। वे नादिया को खिलाते, शिवस्तोत्र करते हुए आगे बढ़ने लगे।

गजासुर ने सुना कि नादिया मनुष्यों के आदेशों का अद्भुत रीति से पालन करता है। उसे बड़ा कुतूहल हुआ और उसने नादिया वाली पूरी मंडली को अपनी राजसभा में बुलवाया। नादिया ने गीत एवं संगीत के अनुरूप नृत्य किया। नादिया के संग आये लोगों ने गीतों में शिव-स्तोत्रों का गान किया। उन स्तोत्रों को सुनकर गजासुर के हृदय में स्थित शिवलिंग फूल कर बढ़ने लगा।

८. गजासुर की मौत
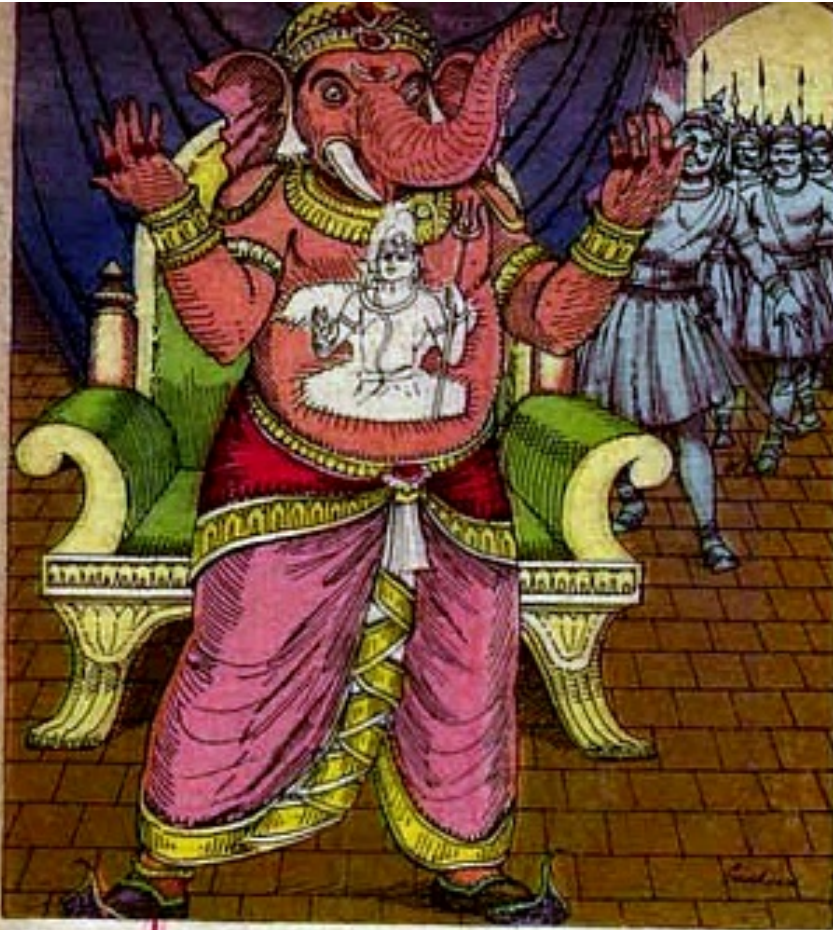
लिंग के बढ़ने के कारण गजासुर को साँस लेना कठिन होगया। उसने समझ लिया कि उसकी मृत्यु निकट आगयी है। उसने श्रद्धाभाव से पुकारा, "हे परमेश्वर, मेरी रक्षा करो !"

"गजासुर, तुम्हारी मौत निश्चित है, तुम कोई वर माँग लो !" लिंग में से आवाज़ आयी।

"परमेश्वर, मेरा सिर वन्दनीय हो, मेरा चर्म आप स्वयं धारण करें और मुझे पुनर्जन्म के बंधन से मुक्ति मिले ! ये तीन वर मुझे प्रदान कीजिये !" गजासुर ने विनती की।

शिव ने उसे वांछित वर प्रदान किये और उसे अपने समीप चूहे के रूप में रहने का अनुग्रह किया, तब वे गजासुर के पेट को चीर कर बाहर प्रकट हुए।

गजासुर के कुटुम्बीजनों को जब यह सारा वृत्तान्त मालूम हुआ तो उन्होंने युद्ध के लिए कमर कस ली। पर विष्णु ने सभी असुरों का संहार कर दिया।

इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, नन्दीश्वर आदि ने अपने सच्चे स्वरूप को धारण कर शिव को प्रणाम किया। सबके सब रुद्रगणों को साथ लेकर कैलास में पहुँचे। शिव ने पार्वती के पास ख़बर भेजी कि वे गजासुर का संहार कर कैलास में आ गये हैं।

पार्वती को पहले ही यह समाचार मिल चुका था। उन्होंने इस शुभ-समाचार के उपलक्ष्य में तैल-स्नान कर गृह-देवताओं की पूजा का संकल्प किया और सिंहद्वार पर रहनेवाले लक्ष्मीगणों के अधिपतियों से बोलीं, "पुत्रो, मैं अभ्यंगन स्नान के लिए अन्दर जा रही हूं। तुम मेरी अनुमति के बिना किसी को भी भवन के अन्दर प्रवेश मत करने देना !"

पार्वती के द्वारा नियुक्त लक्ष्मीगण-अधिपति पहरे पर खड़े होगये-तभी नन्दीश्वर आदि आ पहुँचे और भीतर प्रवेश करने लगे। पहरा दे रहे लक्ष्मीगणों ने उन्हें रोका और कहा, "पार्वतीमाता अभ्यंगन स्नान कर रही हैं। उन्होंने किसी को भी भीतर प्रवेश करने से मना किया है। उनकी अनुमति प्राप्त किये बिना आप अन्दर प्रवेश नहीं कर सकते।"

"हमें तो ईश्वर का आदेश प्राप्त है। तीनों लोकों में कोई भी ईश्वर की आज्ञा का विरोध

लक्ष्मीगण और भी भीषण हो उठे और उन्होंने एक होकर रुद्रगणों को मार भगाया ।

लक्ष्मीगणों के हाथों से मार खाकर रुद्रगण शिव के पास लौट आये और सारी घटना का वर्णन किया । उस समय शिव के पास नारद मुनि भी उपस्थित थे । वे बोले, "महादेव, क्या देवी पार्वती के द्वारपाल इतने घमंडी हैं कि आपकी आज्ञा का भी तिरस्कार करते हैं ?"

शिव पहले ही अपने सेवकों की पराजय के कारण क्रुद्ध थे, अब नारद की बातों से अग्नि में घृत पड़ गया । उन्होंने अपने त्रिशूल को सारे लक्ष्मीगणों के सिर काटने की आज्ञा दी । त्रिशूल ने शिव की आज्ञा का पालन किया । अपने प्रिय पुत्रों के सिर कट जाने के कारण पार्वती दुख और चिन्ता में डूब गयीं ।

पार्वती के द्वार पर अब कोई रोकनेवाला नहीं था। शिव ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य देव और गणों के साथ पार्वती के भवन में पहुँचे । तब तक पार्वती ने स्नान करके केशालंकरण कर लिया था और गृह-देवताओं की पूजा से निवृत्त हो चुकी थीं । पर इसी बीच लक्ष्मीगणों की मृत्यु का समाचार पाकर वे शोकमग्ना बैठी हुई थीं । उन्होंने उठकर आगन्तुकों का स्वागत-सत्कार भी नहीं किया ।

शिव ने पार्वती के दुख को दूर करने का संकल्प किया और उनके निकट पहुँचे । लेकिन पार्वती ने शिव की ओर आँख उठाकर भी न देखा ।

स्थिति बिगड़ी हुई देख विष्णु पार्वती के पास

नहीं कर सकता । हमें भवन के अन्दर जाने का निषेध करनेवाले तुम कौन होते हो ?" यह कह कर रुद्रगण पहरे पर नियुक्त लक्ष्मीगणों के साथ लड़ने के लिए तैयार हो गये । परिणामस्वरूप वहाँ कोलाहल होने लगा ।

उस कोलाहल को सुनकर पार्वती की एक परिचारिका वहाँ आयी और लक्ष्मीगणों तथा रुद्रगणों के बीच संघर्ष होता देखकर दौड़ी हुई पार्वती के पास गयी और सूचना दी, "देवि, दोनों वर्ग के गणों के बीच भीषण संग्राम चल रहा है, अब क्या किया जाये ?"

रुद्रगणों के व्यवहार पर पार्वती क्रुद्ध हो उठीं और उन्होंने लक्ष्मीगणों की सहायता के लिए देवगणों को भेजा । देवगणों की मदद पाकर

गये और बोले, "बहन, गजासुर की मृत्यु का समाचार सुनकर जब तीनों लोक आनन्द मना रहे हैं, तब तुम क्यों चिंतामग्न हो ? कारण बताओ, मैं तुम्हारे कष्ट को दूर करूँगा ।"

पार्वती विष्णु से बोलीं, "भैया, ईश्वर ने अकारण ही मेरे पुत्र लक्ष्मीगणों का संहार किया है । उन्हें जीवित कर उचित अधिकार प्रदान करने पर ही मेरा दुख दूर हो सकेगा ।"

इसी समय शिव ने सबको बताया कि उन्होंने गजासुर को तीन वर दिये हैं, जिनमें पहला वर है कि उसका सिर सदा वन्दनीय हो ।

शिव ने अपने गणों को आज्ञा दी और लक्ष्मी गणों के अधिपति के शरीर को सभा-भवन में मंगवाया । इसके बाद उन्होंने रुद्रगणों को भेजकर गजासुर का सिर मंगवा लिया और उसे लक्ष्मी गणों के अधिपति के धड़ पर रख दिया । लक्ष्मी गणाधिपति तत्काल उठ खड़ा हुआ, मानो लंबी नींद से जगा हो । इसी तरह अन्य गणपतियों के धड़ पर भी हाथियों के सिरों को रखवाया गया और वे सब तुरन्त जीवित हो उठे । सबने पार्वती-परमेश्वर को प्रणाम किया । लक्ष्मीगणों को जीवित पाकर पार्वती परम आनन्दित हुईं ।

चारों तरफ़ हर्ष छागया । आनन्द की उस घड़ी में उपब्रह्मा विश्वदर्शी सभा के बीच में खड़े होकर बोले, "हे पार्वती-परमेश्वर ! मैं अपनी पुत्री जयलक्ष्मी तथा अन्य सभी पुत्रियों का विवाह लक्ष्मी गणपतियों के साथ संपन्न करना चाहता हूँ । आप स्वीकृति दें !"

विश्वदर्शी के प्रस्ताव से सब जगह खुशी की लहर दौड़ गयी । स्वयं ब्रह्मा पुरोहित बने और उन्होंने विश्वदर्शी की पुत्रियों का विवाह गणाधिपतियों के साथ संपन्न कर दिया । गणाधिपतियों में ज्येष्ठ लक्ष्मी गणाधिपति का विवाह जयलक्ष्मी से हुआ ।

उपब्रह्मा विश्वदर्शी की इक्कीस पुत्रियों का विवाह इक्कीस लक्ष्मीगणों के साथ समाप्त होते ही पार्वती शिव से बोलीं, "परमेश्वर, मेरे पुत्रों को अधिकार देकर उन्हें सम्मानित कीजिए । इससे गजासुर को दिया गया आपका वर भी सार्थक हो जायेगा ।"

शिव पार्वती की इच्छा को पूरा करने की बात सोच ही रहे थे कि तभी कुमार स्वामी का

वहां आगमन हुआ। कुमार स्वामी ने पार्वती-परमेश्वर से निवेदन किया कि उसे भी गणों पर अधिकार प्राप्त हो।

"कुमार, तुम्हें तो पहले ही देवगणों पर आधिपत्य मिल चुका है। इसलिए हमने सोचा है कि रुद्रगणों का आधिपत्य लक्ष्मी-गणाधिपतियों को दे दें। तुम इसे स्वीकार करो!" शिव ने पुत्र को समझाया।

पर कुमार स्वामी ने पिता की बात नहीं मानी। वे संपूर्ण गणाधिपति-पद पाने का हठ करने लगे।

कोई और उपाय न देख शिव ने कुमार स्वामी और ज्येष्ठ लक्ष्मी गणाधिपति के बीच एक प्रतियोगिता का आयोजन किया। इस प्रतियोगिता की शर्त यह थी कि दोनों अपने वाहनों पर पुण्य क्षेत्रों का दर्शन करेंगे, पुण्य तीर्थों में स्नान करेंगे और फिर पृथ्वी की परिक्रमा करके कैलास को लौट आयेंगे। जो पहले लौटेगा, वही सब गणों का अधिपति-पद प्राप्त करेगा। ज्येष्ठ लक्ष्मी गणपति और कुमार स्वामी ने यह शर्त स्वीकार कर ली।

शिव ने कुमार स्वामी को वाहन के रूप में मयूर दिया और लक्ष्मी गणपति को अपने निकट चूहे के रूप में स्थित गजासुर दे दिया। कुमार स्वामी मयूर पर सवार होकर तुरन्त आसमान में उड़ गया।

लक्ष्मी गणापति ने जब यह देखा तो पार्वती के पास जाकर कहा, "मां, देखो, मेरे साथ कैसा अन्याय किया गया है! कुमार स्वामी शक्तिशाली और आजानुबाहू है। परमेश्वर ने उसे वाहन के रूप में मयूर दिया है। मैं नाटा हूं। मेरा सिर और पेट भारी हैं। इन्हें लेकर मैं चूहे पर यात्रा कैसे कर सकता हूं? यह तो मिथ्या परीक्षा है। इससे तो शिव मुझसे यह कह देते कि तुम्हें अधिकार नहीं दिया जायेगा तो अपने आप ही निर्णय हो जाता!"

"वत्स, तुम अपने मामा विष्णु के पास जाओ और उनसे कोई उपाय पूछो। वे अवश्य ही तुम्हारी सहायता करेंगे।" पार्वती ने ज्येष्ठ लक्ष्मी गणपति को परामर्श दिया।

सहनशक्ति का रहस्य

श्वेत नगर पहाड़ी इलाके में था। एक बार शीत लहर आयी और सारा नगर सर्दी के प्रकोप के अन्दर आगया। इस तरह की ठंड वहाँ इससे पहले न पड़ी थी। शाम से पहले ही लोग घरों के अन्दर किवाड़ बंद करके बैठ जाते। कोई भी घर से बाहर निकलने की हिम्मत नहीं करता था।

सर्दी के ऐसे प्रकोपकाल में क्या धनवान, क्या गरीब सभी को समस्या का सामना कर पड़ रहा था। भोगेंद्रपाल श्वेत नगर का एक जाना-माना रईस था। एक शाम उसे शीत लहर का झटका लग गया। वृद्धावस्था थी, तमाम ऊनी शॉल-कम्बल ओढ़ने पर भी उसकी कँपकँपी छूट रही थी। घर में अलाव जलाया गया, फिर भी उसकी सर्दी न गयी। घर के सब लोग परेशान हो गये।

भोगेंद्रपाल के बड़े पुत्र का नाम जितेंद्रपाल था। इस समय वही घर का कर्ता-धर्ता था। वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे! तभी जितेंद्र की मां कौशल्या ने बेटे से कहा, "जितेंद्र, मुझे तो ऐसा लगता है कि इन्हें जाड़ा-बुखार है। किसी वैद्य को बुलाना होगा! जल्दी करनी चाहिए!"

"लेकिन माँ, बाहर तो पाला पड़ रहा है। ऐसी भयानक सर्दी में वैद्य के घर कौन जायेगा? अगर कोई चला भी जाये तो क्या वैद्य यहाँ आयेगा? फिर पिताजी के रोग का निदान और दवा का क्या होगा?" जितेंद्रपाल ने असहाय होकर कहा।

"वैद्य तो घर से अवश्य नहीं निकलेगा, लेकिन रोग के लक्षणों की जानकारी देने पर दवा तो भिजवा देगा!" कौशल्या ने जितेंद्र को समझाया।

सबसे वैद्य के घर जाने को कहा गया, लेकिन बाहर निकलने को कोई भी तैयार न हुआ। घर में दो नौकर थे, वे भी मुकर गये।

जितेंद्रपाल को बड़ा गुस्सा आया। उसने गोपाल नाम के नौकर को फटकार बतायी और तुरन्त वैद्य के घर जाने का आदेश दिया। लाचार होकर गोपाल को बाहर निकलने के लिए तैयार होना पड़ा।

गोपाल ने जैसे ही घर का दरवाज़ा खोला, उसे यह पुकार सुनाई दी, "माई, दो कौर खाना दो !"

घर के सामने हड्डियों को कँपा देनेवाली ठंड में एक भिखारी खड़ा हुआ था। वस्त्र के नाम पर उसकी कमर पर एक छोटा-सा अंगोछा था और हाथ में मिट्टी का एक भिक्षापात्र था। आश्चर्य की बात तो यह थी कि उस भयानक सर्दी में भी वह काँप नहीं रहा था।

इस दृश्य को देखकर गोपाल तुरन्त घर के अन्दर गया और जितेंद्रपाल से बोला, "छोटे मालिक, अब हमें वैद्य की ज़रूरत नहीं है। एक महायोगी हमारी ड्योढ़ी पर खड़े हुए हैं। उनकी महिमा अद्भुत है। इस भयानक जाड़े में वे निर्वसन होकर भी बिलकुल नहीं काँप रहे हैं।"

यह अनोखा समाचार सुनकर जितेंद्र द्वार पर आया। भिखारी ने देखा, गृहस्वामी खाली हाथ आ रहा है। वह निराश होकर बोला, "बाबूजी, मैं भूख से तड़प रहा हूँ। मुट्ठी भर भात दिला दो !"

जितेंद्रपाल ने भिखारी की तरफ़ तेज़ दृष्टि डाली और बोला, "सुनो, मेरे पिताजी को जाड़ा-बुखार चढ़ा है। अगर तुम उनके रोग को दूर कर दोगे तो तुम्हें मुट्ठी भर भात क्या, भरपेट खाना खिलाऊँगा।"

वह भिखारी दीन स्वर में बोला, "बाबूजी, खाना देने के लिए मेहरबानी करके ऐसी कड़ी शर्त मत लगाइये। दवा-दारू के बारे में मैं कुछ नहीं जानता। मैं एक साधारण भिखारी हूँ।"

जितेंद्रपाल पल भर सोचता रहा, फिर बोला, "तब तो एक काम कर दो ! बगलवाली गली में वैद्य रामरतन रहते हैं, उनसे मेरे पिताजी की दवा ला दो !"

"मेरे शरीर में अब ज़रा भी दम नहीं है, थोड़ा खा-पीलूँ, तभी मैं चल-फिर सकता हूँ।" यह कहकर वह भिखारी वहीं पर लुढ़क पड़ा।

"देखो भाई, सोच लो ! अगर तुम दवा लाकर दोगे, तभी तुम्हें खाना खिलाऊँगा। अगर

तुम्हें मंजूर न हो तो मैं किसी और को भेज दूँगा !" जितेंद्रपाल ने कहा ।

जितेंद्रपाल के मन में यह शंका थी कि अगर इसे पहले खाना खिला दिया गया तो यह दवा लाकर न देगा ।

लाचार होकर भिखारी ने वैद्य के पास जाना स्वीकार कर लिया । वह किसी तरह उठा । जितेंद्रपाल ने एक कागज़ पर अपने पिता की बीमारी के सारे लक्षण लिखे और उसे भिखारी के हाथ में देकर कहा, "इस कागज़ पर वैद्य जी का जवाब भी लिखवा लाना !" और उसे वैद्य रामरतन के घर का पता अच्छी तरह समझा दिया ।

जितेंद्रपाल के मन में यह शंका थी कि कहीं वह रास्ते से मिट्टी की गोलियां न बना लाये, इसीलिए उसने वैद्य का जवाब लिखवा कर लाने का आदेश दिया था ।

भिखारी अपनी सारी सहनशक्ति बटोर कर उस ठिठुरती ठंड में चल पड़ा। जितेंद्र के मन में यह विश्वास जम गया कि अब पिताजी की दवा अवश्य आजायेगी। उसने घर के भीतर जाकर मां एवं अन्य भाई-बहनों को इस बात की सूचना दी ।

घर के सभी सदस्यों को इस बात पर बहुत आश्चर्य हुआ कि ऐसी भयानक ठंड में वह भिखारी बिन कपड़ों के, भूखा-प्यासा कैसे घूम-फिर रहा है !

कौशल्या ने कहा, "कुछ भिखारियों को सर्दी से बचने की जड़ी-बूटियों की जानकारी होती है । वे इन बूटियों को चबाकर कैसी से कैसी सर्दी में घूम-फिर लेते हैं । दवा लाने के बाद उस भिखारी से इन जड़ी-बूटियों के नाम पूछेंगे !"
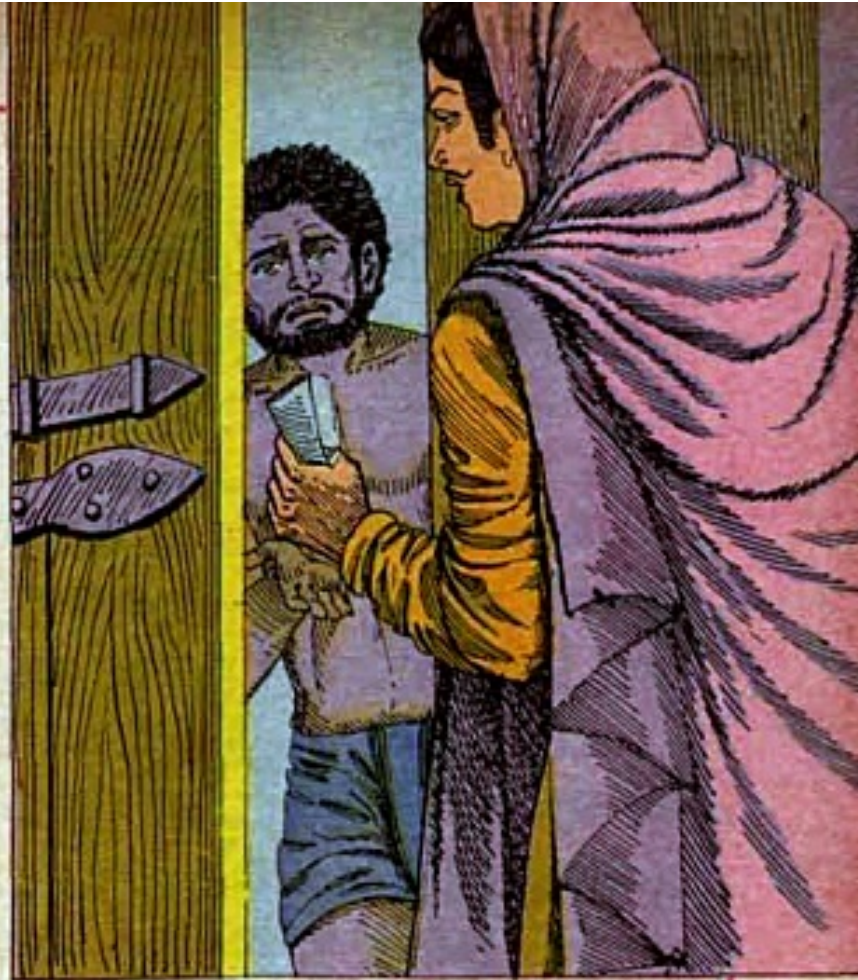
"जड़ी-बूटियों की जानकारी हमें प्राप्त हो या न हो, लेकिन ऐसी ढंडी जगह पर हमें एक नौकर की बड़ी ज़रूरत है । इस भिखारी को तो ज़्यादा तनख्वाह देने की भी ज़रूरत नहीं है । दो जून भरपेट खाना खिला देने पर भी यह घर के सारे काम कर देगा !" जितेंद्रपाल ने अपने मन की बात कही ।

अभी ये लोग बात कर ही रहे थे कि भिखारी लौट आया । जितेंद्रपाल ने अपने पिता को दवा दी । कुछ ही क्षणों में दवा के प्रभाव से

वे आराम से सो गये ।

इस बीच जितेंद्र की पत्नी कमला ने भिखारी को भरपेट खाना खिलाया । इसके बाद कमला ने भिखारी से पूछा, "क्या तुम दूध दुहना जानते हो ?"

"हाँ माई, जानता हूँ !"

भोगेंद्रपाल के घर दो दुधारु भैंसें और दो दुधारु गायें थीं । जब से शीत लहर आयी थी, नौकरों ने रात के समय बाहर जाकर दूध दुहना बंद कर दिया था । कमला ने भिखारी के हाथ में एक बालटी और लोटा देकर कहा, "जाओ, दूध दुह लाओ !"

भिखारी तुरन्त लोटा और बालटी लेकर पशुशाला में गया और थोड़ी ही देर में दूध दुह लाया । कमला यह देखकर बहुत खुश हुई । घर के और लोग भी यह देखकर खुश हो गये कि भिखारी में सर्दी को सहन करने की अद्भुत शक्ति है और वह काम को बड़ी फुर्ती से करता है ।

कौशल्या ने ज़रा हार्दिकता दिखाते हुए पूछा, "तेरा नाम क्या है ?"

भिखारी बोला, "मोहनलाल !"

मोहनलाल के लिए बरामदे में एक चटाई बिछा दी गयी। वह लेटने की तैयारी कर रहा था कि कौशल्या से बोला, "माई, मुझे कुछ ओढ़ने को दे दो !"

"पिछवाड़े में रस्सी पर एक कम्बल सूख रहा है, उसे ले लो !" कौशल्या बोली ।

मोहनलाल बरामदे से बाहर जाने को हुआ, तभी ज़ोर से ठंडी हवा की लहर आयी और वह

सिर से पैर तक काँप उठा। उसने घबरा कर कौशल्या से कहा, "माई, बाहर तो बड़ी सर्दी है, क्या घर में ही कोई और कम्बल नहीं है ?"

मोहनलाल की बात पर सबको बड़ा अचरज हुआ। जितेंद्रपाल ने कुछ विस्मित होकर कहा, "क्या तुम्हें भी सर्दी लगती है ?"

"बाबूजी, आप यह क्या कहते हैं ? हर आदमी को सर्दी लगती है, चाहे वह धनवान हो या भिखारी !" मोहनलाल ने जवाब दिया।

"पर जब तुम वैद्य के घर गये और दूध दुहने के लिए भी बाहर गये, तब क्या तुम्हें सर्दी नहीं लगी ?" जितेंद्रपाल ने पूछा।

"बाबूजी, इस बारे में मैं कुछ नहीं जानता। इधर कई दिनों से मुझे खाना नहीं मिला था। मुझे केवल भूख की पीड़ा और तड़प का ही अनुभव होता था और मुझे किसी प्रकार का कोई भान नहीं था। मुझे यह भी ख्याल नहीं था कि बाहर सर्दी पड़ रही है। मुझे तो अपनी भूख मिटानी थी और भूख मिटाने के लिए मुझे दर-दर जाकर भीख मांगनी थी। सर्दी मानकर कहीं बैठा रह जाता तो मुझे भीख कौन देता ?" मोहनलाल ने कहा।

"तो यह बताओ, तुमने बाहर जाकर दूध कैसे दुह लिया ?"' जितेंद्र ने पूछा।

"इसमें अचरज की क्या बात है ? मालकिन ने मुझे भरपेट खाना खिलाकर मेरी भूख मिटायी। मेरे अन्दर यह भावना पैदा होगयी कि जिस माई ने मुझे खाना खिलाया है, वह जो भी काम मुझे दें, मुझे अवश्य करना चाहिए। दूध दुहते समय मेरे अन्दर कृतज्ञता के भाव के
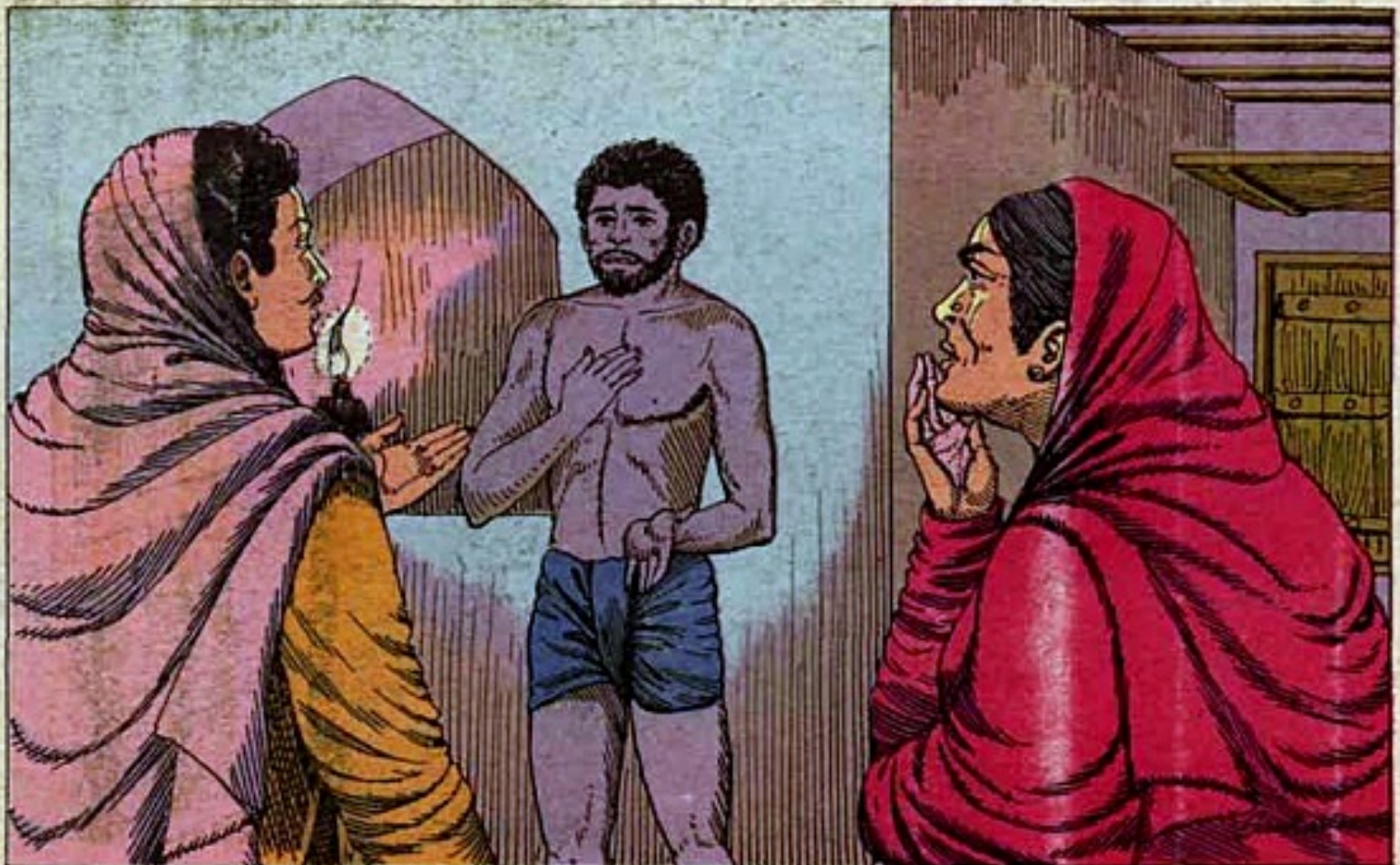
अलावा और कुछ नहीं था। इसलिए सर्दी का मुझे बोध तक नहीं हुआ।" मोहनलाल ने जवाब दिया।

यह जवाब सुनकर जितेंद्रपाल को एक नयी समझ मिली। जिस समय भिखारी की सबसे बड़ी आवश्यकता भूख की ज्वाला को शांत करना था, उस समय उसे जाड़े की पीड़ा का अहसास तक न हुआ। और कृतज्ञता का भाव सर्वोपरि होने पर भी उसे ठंड ने नहीं सताया। जब वह अपने लिए कम्बल लाने निकला, तभी उसे जाड़े की याद आयी और ठंड ने आ घेरा। उसे मोहनलाल में उत्तम स्वभाव का एक मनुष्य दिखाई दिया, जिसमें कृतज्ञता भी थी और जो स्पष्टवादी भी। पर जितेंद्रपाल के मन में एक छोटा-सा सन्देह शेष रह गया।

उसने मोहनलाल से पूछा, "चाहे कैसी भी भूख क्यों न हो चाहे कैसा भी कृतज्ञता-भाव क्यों न हो, शरीर को सर्दी और गर्मी तो लगती ही है, उसे सहन करने की एक सीमा भी होती है। मुझे तो इस बात का आश्चर्य है कि खून जमा देनेवाली इस भयंकर सर्दी को तुम कैसे सहन कर सके?"

अब मोहनलाल के चेहरे पर मंद हास्य आगया। उसने कहा, "बाबूजी, जिनके पास सुख-सुविधाएँ हैं, वे ही इस सर्दी से घबराते हैं। मेरी नज़रों में तो यह सर्दी कोई ऐसी असहनीय नहीं है कि हम कामधंधे छोड़कर बैठ जायें! और जब आदमी के पास कोई साधन सर्दी से बचने का कोई और उपाय तो है नहीं, इसलिए मैं सहन करने के लिए अपनी मानसिक शक्ति लगाता हूँ। बस यही मेरी सहनशक्ति का रहस्य है।"

जितेंद्रपाल के सारे सन्देह दूर हो गये। उस दिन के बाद घर के सभी लोगों ने सीख ली और कोई भी स्थिति होने पर उसे सहन करने की आदत डाली। दूसरे नौकरों ने भी काम में आनाकानी छोड़ दी। अब मोहनलाल भोगेंद्रपाल के घर में केवल साधारण सेवक नहीं, बल्कि एक विश्वसनीय सदस्य के रूप में काम करता था।

गीध

पर्वत के किसी ऊँचे भाग से जिस प्रकार हम दूरबीन की मदद से घाटी के पेड़-पौधों को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं, वैसे ही बिना किसी दूरबीन की मदद के ही काफ़ी ऊँचाई से ज़मीन को देखने की क्षमता रखनेवाले पक्षी गीध होते हैं। इनकी आँखें सहज ही दूरबीन का काम देती हैं। मानव तथा अन्य पक्षियों को ऐसी शक्ति प्राप्त नहीं है। गीधों की आँखों में निकट की वस्तुएँ देखने के लिए एक भाग होता है और दूर की वस्तुओं को देखने के लिए एक और केंद्रीकृत भाग होता है। गीधों की यह शक्ति आहार के अन्वेषण में बहुत अधिक उपयोगी होती है।

गरुड़ के आकार के ये माँसाहारी गीध अत्यन्त विशाल होते हैं। इनकी लम्बाई एक मीटर तक होती है। ये अपने शक्तिशाली पंखों से बड़ी आसानी से आकाश में बहुत ऊपर तक उड़ जाते हैं। इनके सिर और कंठ के हिस्सों में पर नहीं होते। इनके शक्तिशाली पंजों में अंतिम तीन उंगलियां आगे की ओर तथा एक उंगली पीछे की ओर झुकी हुई होती है। नाक मज़बूत और पीछे की ओर मुड़ी हुई होती है।

गीध विशेष रूप से मांसाहारी होते हैं, फिर भी, साधारणतया ये जानवर और पक्षियों को मारकर नहीं खाते। बल्कि, मरे हुए पशु-पक्षियों को नोच कर खाते हैं।

एशिया तथा अफ्रीका में तथा यूरोप के उष्ण प्रदेशों में अगर कोई जंगली जानवर मर जाता है तो वहाँ गीध दलों में उतर जाते हैं और उस जानवर की हड्डी पर चिपके हुए मांस को नोचकर आनन्दपूर्वक खा डालते हैं। ये पक्षी इस बात के भी आदी होते हैं कि जब इन्हें आहार नहीं मिलता तो उपासे रह लेते हैं। लेकिन जब इन्हें आहार मिलता है तो ये आवश्यकता से अधिक खाते हैं। गीध जन्तुओं के शवों को खा जाते हैं, इस कारण वायु-प्रदूषण कम होता है।

यों गीध पक्षी की कई किस्में होती हैं, पर हमारे देश भारत में ज्यादातर गीध काले रंग के होते हैं।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां दिसम्बर १९८५ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

S. B. Prasad

Madhavi Sanara

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ अक्तूबर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

अगस्त के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : पढ़ने का बहाना!

द्वितीय फोटो : मुझे मत जगाना!!

प्रेषक : सुशील 'अकेला', थाना चौक, पो. खगड़िया - ८५१२०४ (बिहार)

'क्या आप जानते हैं?' के उत्तर

१. द बंगाल गजट (१७८०) २. आक्रान ३. आडम्स शिखर ४. कुशीनगर ५. पतंजलि।

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

NEW!
POWER PACKED SURF
POWER PACKED
Surf
washes whitest— keeps clothes like new!
नया पावर पैक्ड सर्फ़.
कण-कण में शक्ति का भंडार – पहले से कहीं ज़्यादा शक्तिशाली फ़ार्मूले से तैयार. गहरी सफ़ाई-धुलाई करे. सफ़ेद कपड़ों में लाए सफ़ेदी शानदार, रंगीन कपड़ों को बनाए सबसे चमकदार.
और यह सब करते हुए कपड़े को सही-सलामत रखे ताकि उसका नयापन बरकरार रहे, यानी हर कमीज़, हर चादर सदा लगे कोरी-कोरी, साफ़-सुथरी, ऐसी सफ़ेद – जैसे नयी.
धुलाई-दर-धुलाई!
नयी निराली खुशबू: जो आपके कपड़ों में बस जाए. इतनी स्वच्छ, इतनी ताज़ी!
आकर्षक नया पैक: नये फ़ार्मूलेवाले पावर पैक्ड सर्फ़ के लिए विशेष.
तो देर किस बात की... आज ही ले आइए अपना नया पावर पैक्ड सर्फ़!
सर्फ़ की धुलाई सबसे सफ़ेद... कपड़े दिखते सदा नये!

स्वाद का गोला जीभ से बोला "... मुझसे चिपको,
मुझसे लिपटो, मुझपे टूटो,
मुझको लूटो. जीभ घुमाके,
जीभ फिराके, चारों ओर से चाट लो
मुझको. मैं अलबेली पॉप हूं लॉली. बाहर मेरे
कैरेमल निराली, भीतर कॅडबरिज़ डेरी
मिल्क चॉकलेट असली. जीभ को चैन न दूं मैं इक पल,
मुंह में देर तक मचाऊं हलचल. तो झटपट
आओ, स्वाद से मेरे ल-ल-ल लिपट जाओ..."
MR. POPS
नयी
Cadbury's
CHOCOLATE ECLAIR POP
कॅडबरिज़
चॉकलेट
एक्लेयर पॉप्स
म-म-मतवाली, स्वाद की लंबी सैर कराने वाली पॉप लॉली!

नटराज की लिखाई मैदान मार लाई
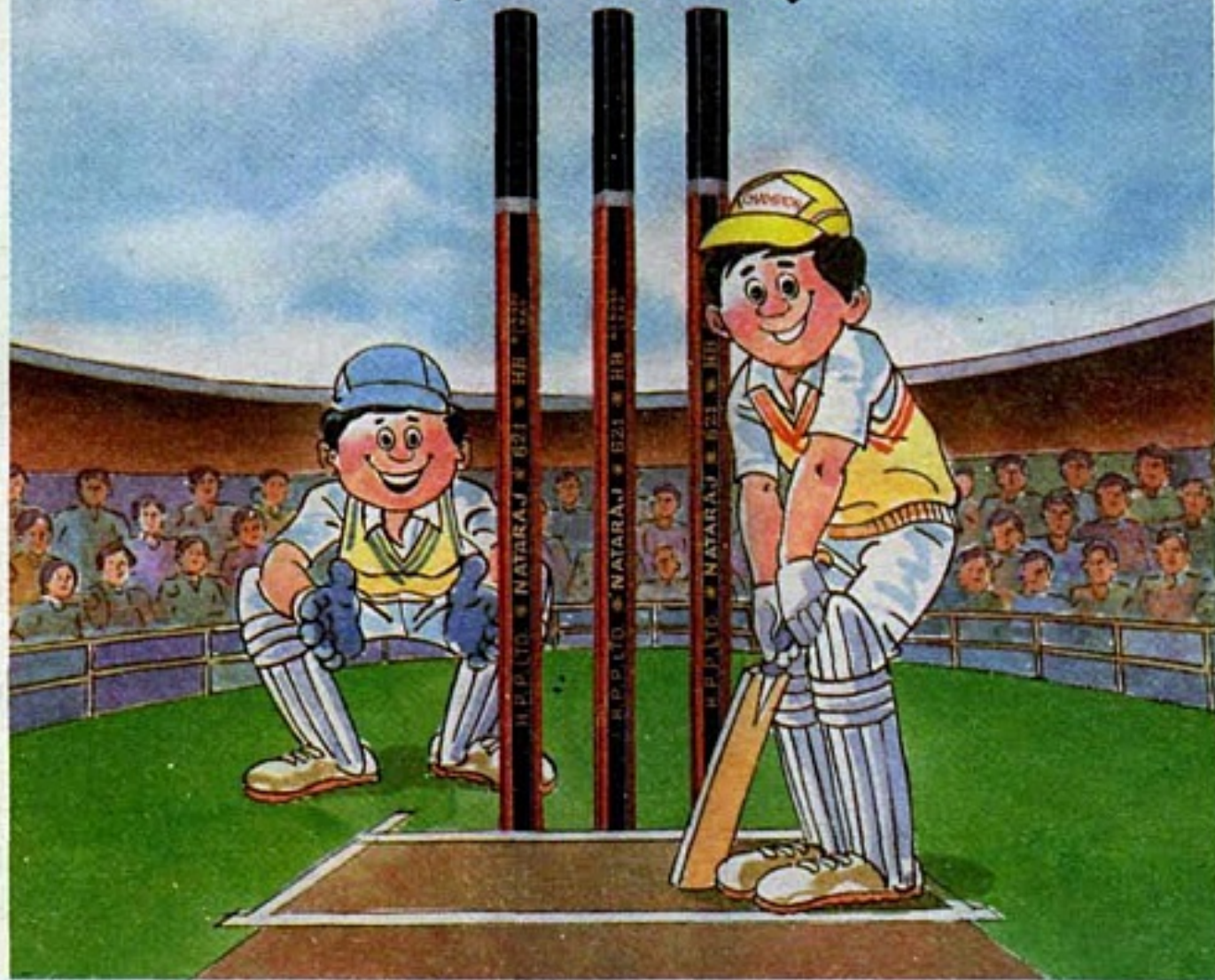
"नटराज से लिखने का मज़ा ही कुछ और है." यही है नटराज के चाहने वालों के दिल की बात. और क्यों न हो - नटराज लिखती ही इतनी बढ़िया है. गहरी, महीन साफ लिखाई. न रूके, न टूटे. लिखाई में तो नटराज हर पेंसिल से आगे है.

नटराज पेंसिल

लिखने से न थके फिर भी ज़्यादा टिके.

उत्कृष्ट उत्पादन के निर्माता

हिन्दुस्तान पेंसिल प्रा. लि., बम्बई-४०० ००१